॥ श्रीसच्चिदानंदाय नमः ॥

अथ श्रीचिदानंदजी अपर नाम श्रीकपूरचंदजी महाराज कृत स्वरोदय ज्ञान प्रारंभ ॥

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र,

॥ छप्पय छंद ॥

॥ नमो आदि अरिहंत, देव देवनपति राया ॥
तास चरण अवलंब, गणाधिप गुण निज पाया ॥
धनुष पंचशतमान, सप्तकर परिमितकाया ॥ वृषभ
आदि अरु अंत, मृगाधिप चरण सुहाया ॥ आदि
अंत युत मध्य, जिन चोवीश इम ध्याइयें ॥ चिदा
नंद तस ध्यानथी, अविचल लीला पाइयें ॥ १ ॥ इ
ककर वीणा धरत, इककर पुस्तक छाजे ॥ चंदवदन
कुंमाल, भाल जस तिलक विराजे ॥ हार मुकुट के
यूर, चरण नूपुरधुनि वाजे ॥ अद्भुतरूप सरूप, निर
खत रंभा लाजे ॥ लीलायमान गजगमनी नित,
ब्रह्मसुता चित्त ध्याइयें ॥ चिदानंद तस ध्यानथी,
अविचल लीला पाइयें ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

उदधिसुता सुत तास रिपु, वाहन संस्थित बाल ॥

बाल जाणि निज दीजियें, वचन विलास रसाल
॥ ३ ॥ अज अविनाशी अकल जे, निरंकार निरध
र ॥ निर्मम निर्जय जे सदा, तास जक्ति चित धार
॥ ४ ॥ जन्म जरा जाकुं नही, नही सोग संताप
सादि अनंती थिति करी, थिति बंधन सवि काप
॥ ५ ॥ तीजे अंशरहित शुचि, चरमपिंम अवगाह
एक समे समश्रेणियें, अचल थयो शिवनाह ॥ ६
सम अरु विषम पणें करी, गुणपर्याय अनंत ॥ एक
एक परदेशमें, शक्तीसुजगमहंत ॥ ७ ॥ रूपाती
व्यतीतमल, पूर्णानंदी ईस ॥ चिदानंद ताकुं नमत
विनयसहित निज सीस ॥ ८ ॥ कालज्ञानादि
थकी, लहि आगम अनुमान ॥ गुरु किरपा करि
कहत हूं, शुची स्वरोदय ज्ञान ॥ ए ॥ स्वरका उ
पिछाणियें, अतिही थिर चित धार ॥ ताथी शुनाशु
कीजियें, जावी वस्तु विचार ॥ १० ॥ नाडी तो
में घणी, पण चोवीश प्रधान ॥ तिनमे नव फुनि
हुमें, तीन अधिक कर जान ॥ ११ ॥ इंगला पिंगल
सुखमना, ये तीनूंके नाम ॥ जिन्न जिन्न अब कह
हूं, ताके गुण अरु धाम ॥ १२ ॥ जृकुटि चक्रसुं
त है, स्वासाको परकास ॥ वंकनालके ढिग थइ,

नी करत निवास ॥ १ ३ ॥ नाभीतें फुनि संचरत, इं
गला पिंगला धाम ॥ दक्षण दिश हैं पिंगला, इंगला
नाडी वाम ॥ १ ४ ॥ इण दोउंके मध्यमें, सुखमन
नाडी जोय ॥ सुखमनके परकासमें, स्वर फुनि चाल
त दोय ॥ १ ५ ॥ डावा स्वर जब चलत हैं, चंद उद
य तब जान ॥ जब स्वर चालत जीमणो, उदय हो
त तब भान ॥ १ ६ ॥ सौम्य काजकूं शुभ शशी, क्रूर
कामकूं सूर ॥ इणिविधि लख कारज करत, पामे सु
ख भरपूर ॥ १ ७ ॥ दोऊं स्वर सम संचरे, तब सुख
मन पहिचांन ॥ तामें कोउं कारज करत, अवस
होय कछू हांन ॥ १ ८ ॥ चंद चलत कीजे सदा, थिर
कारज स्वर भाल ॥ चर कारज सूरज चलत, सिद्ध हो
य ततकाल ॥ १ ए ॥ कृष्णपक्ष स्वामी रवि, शुक्लप
क्ष पति चंद ॥ तिथिभाग इनका लहि, कारज करत
[illegible]नंद ॥ २ ० ॥ कृष्णपक्षकी तीन तिथि, प्रथम रवी
की जांन ॥ तीन शशीकी फुनि रवि, इण अनुक्रम प
हिचांन ॥ २ १ ॥ शुक्ल पक्षकी तीन तिथि, चंदतणी
कहिमीत ॥ फुन रवि फुन शशि फुन रवि, शशि गि
णवाकी रीत ॥ २ २ ॥

॥ छप्पय छंद ॥

॥ मंगल शनि आदित्य, वारस्वामी रवि जाणो ॥ सुरगुरु बुध अरु सोम, शुक्रपति चंद वखाणो ॥ इण विधि स्वर तिथीवार, जिन्नकर नक्त्र पिछाणो ॥ शुनकारिजकूं योग्य, सकल इण विधि मन आणो ॥ निरगम सुरगम विध्र, नाव इण विध कें लखो ॥ तत्त्व तणो परकाश, सुधारस इम चखो ॥ २३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कृष्णपक्त एकमदिनें, प्रात सूर जो होय ॥ तौतें पक्त प्रवीण नर, आनंदकारी जोय ॥ २४ ॥ शुक्लपक्तके आदिदिन, जो शशि स्वर उद्योत ॥ तौतें पक्तविचारियें, सुखदायक अतिहोत ॥ २५ ॥ चंडतिथिमें चंड स्वर, सूर तिथि वहे सूर ॥ कायामें पुष्टि करे, सुख आपत नरपूर ॥ २६ ॥ चंडतिथीमें आयजो, नानु करत प्रकाश ॥ तो कलेश पीडा हुवे, किंचित वित्त विनाश ॥ २७॥ सूरजतिथि पडिवा दिने, चले चंडर जोर ॥ पीड कलह नृप नय करे, चित चंचल चिहुं उर ॥ २८ ॥ दोऊ पक्त पडिवा दिने, सुखमन स्वर जो होय ॥ लाज हाण सामान्यथी, ते निहचें करि जोय ॥ २९ ॥ वृश्चिक सिंह वृष कुंन पुन, शशि स्वरनी

ए रास ॥ चंड्जोग इणके मिलत, शुन कारज परका
श ॥ ३० ॥ कर्क मकर तुल मेष पुन, चर राशी ए
चार ॥ रवी संग ए संचरत, चरकाजें सुखकार ॥३१॥
मीन मिथुन धन कन्यका, द्विस्वनाव ए जान ॥ सु
खमन स्वरसुं मिलत है, काजकरत होय हान॥३२॥
ससि सूरजके मास इम, जिन जिन करियें जाण ॥
रासी वर्णित दिन थकी, अधिक नेद मन आण ॥ ३३॥
प्रश्न करणकूं कोउ नर, आवत हिरदे धार ॥ पृछक
नरनी दिसी तणो, निर्णय कहुं विचार ॥ ३४ ॥ सन
मुख फावी ऊर्ध्वदिशि, रही प्रश्न करे कोय ॥ चंड्जो
ग हे ता समे, तो कारिज सिद्धी होय ॥ ३५ ॥ नी
चें पीछे जीमणो, जो कोइ पूछे आय ॥ नानु जोग
स्वर होय तो, तस कारज हो जाय ॥ ३६ ॥ पूछे द
क्षिण नुज रही, सूरज स्वरमें वात ॥ लगन वार ति
थि जोग मिलि, सिद्धकार्य अवदात ॥ ३७ ॥ वाम
नाग रहि जो कहे,प्रश्नतणो परसंग ॥ शशि स्वर जो
पूरण हुवे, तो तस काज अनंग ॥ ३८ ॥ पूछे दक्ष
ण कर रही, शशि स्वरमें जो कोय ॥ रवी तत्व तिथ
वार बिन, तस कारज नवि होय ॥ ३९ ॥ अधो पृष्ठ
पाछल रही, पृछकनो परिमाण ॥ चंद चलत फल ते

हनुं, पूर्व कथित पहिछाण ॥ ४० ॥ चलत सूरस्व
र जीमणो, (रहि) पूछे आवी उर ॥ चंद्रजोग विन तेह
नो, नवि कारिज विधि कोर ॥ ४१ ॥ सनमुख ऊर्ध्व
दिशा रहि, पूछे जो रवि मांहि ॥ चंद्रजोग विन तेह
नुं, कारज सीजे नाहि ॥ ४२ ॥ लग्न वार तिथि तत्व
पुन, रास जोग दिसि सोध ॥ कारजके अक्षर गिणे,
होवे साचो बोध ॥ ४३ ॥ सम अक्षर ससिकूं लखो,
विषम लानु परधान ॥ तिनकी संख्या करनकूं. कहुं
एम अनुमान ॥ ४४ ॥ चार आठ द्वादश युगल, ष
ट दश चवदें जाण ॥ षोडशथी ससि योग ए, महा
शुद्ध पहिछाण ॥ ४५ ॥ एक तीन सर सात नव, ए
कादश अरु तेर ॥ तिथि संयम पचवीस पुन, रवि
जोग इम हेर ॥ ४६ ॥ लोक काज सहु परिहरे, धरे
सुनिहचल ध्यान ॥ श्रवण मनन चिंतन करत,लहत
स्वरोदय ज्ञान ॥ ४७ ॥ अथवा प्राणायाम जे, साधे
चित्त लगाय ॥ ताकूं पहेली नूमिका, सिद्ध स्वरोदय
थाय ॥ ४८ ॥ प्राणायाम विचार तो, हे अति अग
म अपार ॥ नेद दोय तस जाणियें, निश्चें अरु व्यव
हार ॥ ४९ ॥ निहचेंथी निज रूपमें, निज परिणति
होय लीन ॥ श्रेणीगत ज्यों संचरे,तों जोगी परवीण

॥५०॥ उपसम क्षपक कही जुगल,श्रेणीप्रवचन मांहि ॥ तिणको काल स्वनाव वस, साधन हिवणा नांहि ॥ ५१ ॥ अहनिसि ध्यान अन्यासथी, मनथिरता जो होय ॥ तो अनुनव लव आज फुन,पावे विरला कोय ॥ ५२ ॥ निज अनुनव लवलेशथी, कठिण कर्म होय नास ॥ अल्पनवें नवि ते लहे, अविचलपुर को वास ॥ ५३ ॥ व्यवहारें ये ध्यानको, नेद नवी कहिवाय ॥ निन्ननिन्न कहितां थकां, ग्रंथ अधिक हो जाय ॥ ५४ ॥ नाममात्र अब कहत हूं, याको किंचित नाव ॥ अधिक नवि तुम जाणजो, गुरुगम तास लखाव ॥ ५५ ॥ अष्टनेद है जोगके, पंचम प्राणायाम ॥ ताके सप्त प्रकार है,सकल सिद्धके धाम ॥५६॥ रेचक पूरक तीसरो, कुंनक नेद पिछाण ॥ सांतिक समता एकता, लीन नाव चित आण ॥ ५७ ॥ पूरक पवन गहत सुधि, कुंनक थिरता तास ॥ रेचक बाहिर संचरे, शांतिक ज्योति प्रकाश ॥५८॥ समता ध्येय स्वरूपमें, तिहां सूक्ष्म उपयोग ॥ गहे एकता गुण विषे, लीननाव निजजोग ॥ ५९ ॥ लीन दशा व्यवहारथी, होत समाधि रूप ॥ निहचैथी चेतन ए, होवें शिवपुर नूप ॥ ६० ॥ स्वासाकूं अति थिर क

रें, ताऐ नही लिगार ॥ मूल बंध दृढ लायके, करे बीज संचार ॥ ६१ ॥ वायु पांच शरीरमें, प्राण समान अपान ॥ उदान वायु चोथो कह्यो, पांचम अनिल अव्यान ॥६२॥ प्राण हियें पुन सर्वगत, तनमें रहत समान ॥ आधार चक्रगति जाणियें, तीजो वायु अपान ॥ ६३ ॥ उदान वासह कंठमें, संधिगती ए अव्यान ॥ पंच वायके बीज पुन, पंचहिये इम आन ॥ ६४ ॥ ऐँ पैँ रैँ ब्लौँ क्लौँ सुधि, पंच बीज परधान ॥ इनके गर्भित नेदको, कहत न आवे मान ॥ ६५ ॥ पंचबीज संचारथी, अनहद धुन जे होय ॥ निर्गमनेद धुनि तणो, जोगीश्वर लहे कोय ॥ ६६ ॥ वरण मात्र इण बीज के, कमल कमल थित जाण ॥ निन्न निन्न गुण तेहनो, शास्त्रथकी मन आण ॥ ६७ ॥ सकल सिद्धि इणमें वसे, सर्व लब्धि इण मांहि ॥ केतिक आज हूं संपजे, केतिक तो अब नांहिं ॥ ६८ ॥ वरण नाभिमें संचरे, सोहं शब्द उद्योत ॥ अजपजाप ते जाणियें, अनुनव नाव उद्योत ॥ ६९ ॥ नानीथी हिये संचरे, तिहां रंकार प्रकाश ॥ मन थिरता तामे हुवे, अशुन संकल्प होय नाश ॥ ७० ॥ सुरतमोर

लावे गगन, तिरवेणी करवास ॥ तिहां अनहद धुनि ऊपजे, थिर योती परकास ॥ ७१ ॥

॥ चोपाइ छंद ॥

॥ अनहद अधिष्ठाय जे देव, थिरचित देख करे त सु सेव ॥ ऋद्धि अनेक प्रकार देखावे, अद्भुतरूप द्द ष्ट तस आवे ॥ ७२ ॥ ऋद्धि देख नवि चित्त चलावे, ज्ञान समाधि ते नर पावे ॥ वेदभेद समाधि कहियें, गुरुगम लक्ष तेहनो लहियें ॥७३॥ नाभिपास हे कुंभ लि नाडी, बंकनाल हे तास पिछाडि ॥ दशम द्वारका मारग सोइ, ऊलट वाट पावे नहिं कोइ ॥ ७४ ॥ मु द्रापंच बंधत्रिय जाणो, आसण चोरासी पहिचाणो ॥ तामे आसण युगपरधान, मूलासण पद्मासण जाण ॥ ७५ ॥ अस्तविस्त वायू संचरे, कारण विशेषें षट कर्म करे ॥ नेती धोती नवली कही, भेद चतुर्थ त्राटक फुनि लही ॥ ७६ ॥ वस्ती पंचम भेद पिछा नो, रस कपाल भाती मन आनो ॥ किंचित आरंभ लख इण मांहि, जैनधरममें करियें नांहि ॥ ७७ ॥ त्राटक नवलियें दोय भेद, करत मिटे सहु तनका खे द ॥ रोग नवि होवे तनमांहि, आलस छंघ अधिक होये नांहि ॥ ७८ ॥ दृष्टि अष्टयोगनी कही, ध्यान क

रत ते अंतर लही ।। कीजें ए सालंबन ध्यान, निरालं बता प्रगटत ज्ञान ।। ७९ ।। मित्रा तारा दूजी जाण, बला चतुर्थी दीप्रा मन आण ।। थिरा दृष्टि कांता फुनि लहियें, प्रना परा अष्टम दृग कहियें ।। ८० ।। सघन अघन दिन रयणी कही, ताका अनुनव या मे लही ।। निरउपाधि एकांते स्थान, तिहां होय ए आतम ध्यान ।। ८१ ।। अल्पआहार निज्ञा वश करें, हित सनेह जगथी परिहरे ।। लोकलाज नवि करे लिगार, एक प्रीत प्रनुथी चित्तधार ।। ८२ ।। आशा एक मोक्षकी होय, बीजी डुविधा नवि चित कोय ।। ध्यान जोग्य जाणो ते जीव, जे नवडुखथी मरत स दीव ।। ८३ ।। परनिंदा मुखथी नवि करे, स्वनिंदा सुणी शमता धरे ।। करे सहु विकथा परिहार, रोके कर्म आगमनधार ।। ८४ ।। हरख शोक हिरिदे न वि आने, शत्रुमित्र बराबर जाने ।। परआशा तजी रहे निराश, तेहथी होय ध्यान अन्यास ।।८५।। ध्यान अन्यासी जो नर होय, ताकूं डुःख उपजे नवि कोय ।। इंज्ञादिक पूजे तस पाय, रुद्धि सिद्धि प्रगटे घट आय ।। ८६ ।। पुष्पमाल सम विषधर तास, मृगपति मृगसम होवे जास ।। पावक होय पाणि ततका

ल, सुरभिसुत सदृश जस व्याल ॥ ८७ ॥ सायर गो पदनी परे होय, अटवी विकट नगर तस जोय ॥ रिपू लहे मित्राइ भाव, शस्त्र तणो नवि लागे घाव ॥८८॥ कमलपत्र करवाल वखानो, हालाहल अमृत करि जानो ॥ दुष्ट जीव आवे नहिं पास, जो आवे तो लहें सुवास ॥ ८९ ॥ जो विवहार ध्यान इम ध्यावे, इंद्रा दिक पदवी ते पावे ॥ निहचें ध्यान लहे जब कोय, ताकुं अवश्य सिद्धपद होय ॥ ९० ॥ सुख अनंत विलसे तिहुं काल, तोडी अष्ट कर्मकी जाल ॥ एसा ध्यान धरो नितमेव,चिदानंद लहि गुरुगम भेव ॥९१॥ ध्यान चार भगवंत बताये, ते मेरे मन अधिके भाये ॥ रूपस्थ पदस्थ पिंमस्थ कहीजें, रूपातीत साध शिव लीजें ॥ ९२ ॥ रहत विकार स्वरूप निहारी, ताकी संगत मनसा धारी ॥ निजगुण अंस लहे जब कोय, प्रथम भेद तिण अवसर होय ॥ ९३ ॥ तीर्थंकर पदवी परधान, गुण अनंतको जाणी थान ॥ गुण विचार निजगुण जे लहे, ध्यानपदस्थ सुगुरु इम कहे ॥ ९४ ॥ भेदज्ञान अंतरगत धारे, स्वपरपरिणति भिन्न विचारे ॥ सकति विचारि शांतता पावे, ते पिंमस्थ ध्यान कहिवावे ॥ ९५ ॥ रूप रेख जामें नवि

कोइ, अष्टगुणां करि शिवपद सोई ॥ ताकूं ध्यावत तिहां समावे, रूपातीत ध्यान सो पावे ॥ ए६ ॥ प्राणायाम ध्यान जे कहियें, ते पिंमस्थ नेद नवि लहियें ॥ ए७ ॥ मन अरु पवन समागम जानो, पवन साध मन निजघर आनो ॥ अहनिसि अधिका प्रेम लगावे, जोगानल घटमांहि जगावे ॥ अल्प आहार आशन दृढ करे, नयण थकी निज्ञ परिहरे ॥ ॥ ए८ ॥ काया जीव निन्न करी जाणे, कनक उपल नी पर पहिगणे ॥ नेद दृष्टि राखे घटमांहि, मन शंका आणे कबुं नांहि ॥ एए ॥ कारज रूप कथे मुखवाणी, अधिक नांहि बोले हित जाणी ॥ स्वपन रूप जाणे संसार, तन धन जोबन लखे असार ॥ ॥ १०० ॥ श्रीजिनवाणी हियें दृढ राखे, शुद्धध्यान अनुनवरस चाखे ॥ विरला ते जोगी जगमांहि, ताकूं रोग सोग नय नांहि ॥ १०१ ॥ तेजक्रांति तनमें अतिवाधे, जे निश्चलचित ध्यान आराधे ॥ अल्पआहार तन होय निरोग, दिनदिन वधे अधिक उपयोग ॥ ॥ १०२ ॥ नासा अग्रनाग दृगधरी, अथवा दोउ संपुट करी ॥ हिये कमल नवपद जे ध्यावे, ताकुं सहज ध्यानगति आवे ॥ १०३ ॥ माया बीज प्रणवधरि

आद, वरण बीज गुण जाणे नाद ॥ चढता वरण क रे थिर स्वास, लख धुर नाद तणो परकास ॥ १०४ ॥ प्राणायाम ध्यान विस्तार, कहेतां सुरगुरु न लहे पार ॥ तातें नाम मात्र ए कह्या, गुरु मुख जाण अधिक जे रह्या ॥ १०५ ॥ प्राणायाम भूमि दश जाणो, प्र थम स्वरोदय तिहां पिछाणो ॥ स्वर परकाश प्रथम जे जाणे, पंचतत्त्व फुनि तिहां पिछाणे ॥ १०६ ॥ कहूं अधिक अब तास विचार, सुणो अधिक चित्त थिरता धार ॥ स्वरमें तत्त्व लखे जब कोइ, ताकूं सिद्ध स्वरोदय होइ ॥ १०७ ॥

॥ अडिल छंद ॥

॥ दोय स्वरोमें पांच तत्त्व पहिचाणियें, वर्ण मान आकार काल फल जाणियें ॥ इणविध तत्त्व लखाव साध ता जे लहे, साची विसवा वीस वात नर ते कहे १०८

॥ दोहा ॥

॥ पृथ्वी जल पावक अनिल, पंचम तत नभ जा न ॥ पृथ्वी जल स्वामी ससी, अपर तीनको भान ॥ ॥ १०९ ॥ पीत श्वेत रातो वरण, हरित श्याम पुन जान ॥ पंचवर्ण ये पांचके, अनुक्रमथी पहिछान ॥ ॥ ११० ॥ पृथिवी सनमुख संचरे, करपल्लव षट दो

य ॥ समचतुरंस आकार तस, स्वर संगममें होय ॥
॥ १११ ॥ अधोनाग जल चलत है, षोडश आंगुल
मान ॥ वर्तुल है आकार तस, चंद सरीखो जान ॥
॥ ११२ ॥ चारांगुल पावक चले, उर्ध्वदिशा स्वरमां
ह ॥ त्रीकोण आकार तस, बाल रवीसम आह ॥
॥ ११३॥ वायू तिर्छा चलत है, अष्टांगुल नितमेव ॥
ध्वजा रूप आकार तस,जाणो इणविध भेव ॥११४॥
नासा संपुटमें चले, बाहिर नवि परकास ॥ सुन्नअ
है आकार तस, स्वर युग चलत आकाश ॥ ११५॥
प्रथम पच्चास पल दूसरो; चालीश त्रीजो त्रीश ॥ वी
शरु दश पल चलत है, तत स्वरमें निशदीश ॥११६॥
घडी अढाइ पांच तत, एक एक स्वर मांहि ॥ अह
निशि इणविध चलत है, यामें संशय नांहि ॥११७॥
पंच तत्त्व स्वरमें लखे, भिन्नभिन्न जब कोय ॥ काल
समयका ज्ञान तस, वरस दिवसका होय ॥ ११८ ॥
प्रथम मेष संक्रांतिको, व्है प्रवेश जब आय ॥ तबही
तत्त्व विचारीयें, स्वासा थिर ठहराय ॥ ११९ ॥ भा
वा स्वरमें होय ज्यो, महीतणो परकास ॥ उत्तम जो
ग वखाणीयें, नीको फल है तास ॥ १२० ॥ पर
जाकुं सुख व्है घणो, समो होय श्रीकार ॥ धान हो

य महियल घणो, चोपदकुं अति चार ॥ १२१ ॥ ईत
नीत उपजे नही, जनवृद्धी पण थाय ॥ इत्यादि
क बहु श्रेष्ठ फल, सुख पामे अति राय ॥ १२२ ॥
चलत तत्व जल तिण समे, शशि स्वरमें जो आय ॥
ताको फल अब कहत हूं, सुणजो चित्त लगाय॥१२३॥
मेघवृष्टि होवे घणी, उपजे अन्न अपार ॥ सुखी होय
परजा सहु, चिदानंद चित्त धार ॥ १२४ ॥ धर्मबुद्धि
सहुकूं रहे, पुण्य दानथी प्रीत ॥ आनंद मंगल ऊपजे,
नृप चाले शुन्न नीत ॥ १२५ ॥ शशि स्वरमें ये जाणी
यें, तत्वयुगल सुखकार ॥ तत्व तीन आगल रहे, ति
नको कहूं विचार ॥ १२६ ॥ लगे मेष संक्रांत तव, प्र
थम घडी स्वर जोय ॥ जैसो स्वरमें तत्व व्हे, तैसोही
फल होय ॥ १२७ ॥ जो स्वरमें पावक चले, अल्प
वृष्टि तो होय ॥ रोग दोख होवे सही, काल कहे स
हु कोय ॥ १२८ ॥ देशभंग परजा दुखी, अग्नि तत्व
परकाश ॥ दोउं स्वरमें होय तो, अशुन्न अहे फल ता
स ॥ १२९ ॥ वायु तत्व स्वरमें चलत, नृप विग्रह क
बुं थाय ॥ अल्पमेघ वरसे मही, मध्यम वर्ष कहाय
॥१३०॥ अद्धीसा अन नीपजे, खड थोडासा होय ॥
अनिल तत्वका इणिपरें, मनमांही फल जोय ॥१३१॥

स्वरमाही जो प्रथमही, वहे तत्व आकाश ॥ तो ते
काल पिछाणियें, होय न पूरा घास ॥ १३२ ॥
इण विधथी ए जाणिये, तत्त्वस्वरनके मांहि ॥ फल
मनमें पण धारियें, यामे संसय नांहि ॥ १३३ ॥ मधू
मास सित प्रतिपदा, कर तस लगन विचार ॥ चलत
तत्व स्वर तिणसमें, ताको वर्ण निहार ॥ १३४ ॥
प्रातसमे ससि स्वर विषे, मही तत्व जो होय ॥ तातें
सर्व विचारियें, सुख दायक अति होय ॥ १३५ ॥
घनवृष्टि होवे घणी, समो होय श्रीकार ॥ राजा प
रजाके हिये, हर्ष संतोष विचार ॥ १३६ ॥ ईत भी
त उपजे नहीं, महोटा भय नवि कोय ॥ चिदानंद इ
म चंदमें, क्षिती तत्व फल जोय ॥ १३७ ॥ चिदानंद
जो चंदमें, प्रात उदक परवेश ॥ तोते समो सुभिक्ष
अति, वर्षा देश विदेश ॥ १३८ ॥ शांति पुष्टि होवे घ
णी, धर्मतणो अतिराग ॥ भविक हिये अति ऊपजे,
दान अर्थ धन त्याग ॥ १३९ ॥ जल धरणी दोऊ वहें,
दिवसपति घर आय ॥ प्रातकाल तो ते वरस, मध्यम
समो कहेवाय ॥ १४० ॥ तीन तत्व अब शेष जे, स्व
रमें तास विचार ॥ मध्यम निष्ठ कह्यो तिको, पूर्वकथि
त चित्तधार ॥ १४१ ॥ राजभंग परजा दुखी, जो नभ

वहे स्वर मांहि ॥ पडे काल बहु देशमें, यामें संसय नांहि ॥ १४२ ॥ स्वर सूरजमें अग्निको, होय प्रात परवेश ॥ रोग सोगथी जन बहु, पावे अधिक कलेश ॥ ॥ १४३ ॥ काल पडे महियल विषे, राजा चित नवि चेन ॥ सूरजमें पावक चलत, एम स्वरोदय वेन ॥ ॥ १४४ ॥ नृप विग्रह कबु ऊपजे, अल्पवृष्टि पुन हो य ॥ स्वर सूरजमें अनिलको, चिदानंद फल जोय ॥ १४५ ॥ सुखमन स्वरजो ता दिवस, प्रातसमय जो होय ॥ जोवणहार मरे सही, छत्र भंग पुन जोय ॥ १४६ ॥ कहूक थोडो ऊपजे, कहूक तेहुं नांहि ॥ सुखमन स्वरको इन परे, फल जाणो मनमांहि ॥ ॥ १४७ ॥ दुविध रीत जोवण तणी, कही वरषनी एम ॥ त्रीजी आगल जाणजो, धरि हियडे अति प्रेम ॥ १४८ ॥ माघमास सित सप्तमी, फुनि वैशाखी त्रीज ॥ प्रात समयकों जोइयें, वरस दिवसको बीज ॥ १४९ ॥ निशापतिके गेहमे, जलधरणी परवेश ॥ करें आय जो तिण समे, तो सुख देश विदेश ॥ १५० ॥ अपर तत्व निजनाथ घर, वहे अधम फल जाण ॥ उदक मही जो भानु घर, तो मध्यम चित आण ॥ ॥ १५१ ॥ एक अशुभ फुन एक शुभ, तीनुंमे जो

होय ॥ सिद्ध होय फल तेहनुं, मध्यम निहचें जो
य ॥ १५२ ॥ सहु परीक्षा नावमें, मेष नाव बलवा
न ॥ ता दिन तत्व निहारिके, फल हिरदे दृढ आन
॥ १५३ ॥ अब जे जोवणहार नर, तेहनो कहूं वि
चार ॥ आपलखी अपणे हिये, अपणो करहुं विचा
र ॥ १५४ ॥ चैत्रशुदी एकम दिने, शशि स्वर जो न
वि होय ॥ तो तेहने तिहुं मासमें, अति उदवेग सु
जोय ॥ १५५ ॥ मधूमास सित बीज दिन, चले न
जो स्वर चंद ॥ गमन होय परदेशमें, तिहां उपजे
दुखदंद ॥ १५६ ॥ चैत्रमास सित त्रीजकूं, चंद चले
नहि आय ॥ तो ताके तनमें सही, पित्तज्वरादिक था
य ॥ १५७ ॥ मरण होय नव मासमें, जो स्वर जाणे
तास ॥ मधूमास सित चोथकूं, जो नवि चंद्र प्रकाश
॥ १५८ ॥ निशापतिस्वर चैतशुदि, पांचमको नवि हो
य ॥ राजदंम महोटा हूवे, संशय इहां न कोय ॥
॥ १५९ ॥ चैत्रशुदि छठके दिवस, चंद्र चले नहि जा
स ॥ वरस दिवस भीतर सही, विणसे बंधव तास
॥ १६० ॥ चले न चंदा चैतसित, सप्तम दिन लवले
श ॥ तस नर केरी गेहिनी, जावे जमके देश ॥ १६१ ॥
तिथी अष्टमी चैत्रशुदि, चंदविना जो जाय ॥ तो पी

डा अति ऊपजे, नाग्य योग सुख थाय ॥ १६२ ॥
तिथि अष्टमनो चैतसित, दीनौ फल दरसाय ॥ होय
ससि शुन तत्त्वमें, तो उलटुं मन नाय ॥ १६३ ॥
तत्त्व बाणमें कहत हूं,प्रश्नतणो परसंग ॥ इणविध हिये
विचारके, कथियें वचन अनंग ॥ १६४ ॥ जलधरणी
के जोगमें, प्रश्न करे जे कोय ॥ निशानाथ पूरण वह
त, तस कारज सिध होय ॥ १६५ ॥ अनिल अग
न आकाशको, जोग ससि स्वर मांहि ॥ होय प्रश्न क
रता थकां, तो कारज सिध नांहि ॥ १६६ ॥ क्षिति
उदक थिर काजकूं, उडुगणपति स्वर मांहि ॥ तत्त्व
युगल ए जाणियें, चरकारजकूं नांहि ॥ १६७ ॥ वा
यु अगनि नन तीन यें, चरकाजें परधान ॥ तत्त्व हि
येमें जानियें, उदय होत स्वर नान ॥ १६८ ॥ रोगी
केरो प्रश्न नर, जो कोउ पूछे आय ॥ ताकूं स्वास वि
चारके, इम उत्तर कहेवाय ॥ १६ए ॥ ससि स्वरमें ध
रणी चलत,पूछे तस दिस मांहि ॥ तासें निहचें करी
कहो, रोगी विणसे नांहि ॥ १७० ॥ चंद बंध सूर
ज चलत, पूछे मावी उंड ॥ रोगीको परसंगतो, जी
वे नहिं विधि कोड ॥ १७१ ॥ पूरण स्वरशुं आयके,
पूछे खाली मांहि ॥ तो रोगीकूं जाणजो, साता होवे

नांहि ॥ १७२ ॥ खाली स्वरछुं आयके, वहते स्वरमें वात ॥ जो कोउ रोगीनी कहे,तो तस नाहिंज घात ॥ १७३ ॥ वाय पित्त कफ तीनये, नयो पिंमत्रय जोग ॥ समथी सुख होय देहमें, विषम हूआ होय रोग ॥ १७४ ॥ वाय चोरासी पिंमर्में, पित्त पचीश प्रकार ॥ कफ त्रिय नेद वखाणियें, द्वादश सत चित्त धार॥ ॥ १७५ ॥ वायु निवास उदर विषे, स्वामी हे तस सूर ॥ मुनि शत धमणी मांहि ते, रहत सदा नरपूर ॥ १७६ ॥ खंधमांहि पुन जाणजो, पित्ततणो नित वास ॥ जठरागनिमें संचरत, दिवानाथ पति तास॥ ॥ १७७ ॥ नानिकमलथी वाम दिस, करपल्लव त्रय जाण ॥ नाडि युगल हे कफ तणी, रहि हैयेमें आण ॥ १७८ ॥ ससि स्वामि तस जाणजो, ये विवहारी वात॥निश्चेंथी लख एकमें,तीनूं आय समात ॥१७ए॥ अपणी अपणी रुत विषे, वाय पित्त कफ तीन ॥ जोर जणावत देहमें, तस उपचार प्रवीन ॥ १८० ॥ वैद्यकग्रंथनथी लख्यो, तिणका अधिक प्रकार ॥ मूल तीनसुं होत है, रोग अनेक प्रकार ॥ १८१ ॥ अपणे अमल विसारके, बीजाने घर जाय ॥ रोग कफादिथी जुङमे, सन्निपात कहिवाय ॥ १८२ ॥ रोमरो

ममां जगत गुरु, पोणा बे बे रोग ॥ जाख्या प्रवचन मांहि ते, अशुभ उदय तस जोग ॥१८३॥ प्रश्नकरे रोगी तणो, जैसा स्वरमें आय ॥ स्वर फुनि तत्त्व विचार कें, तैसा रोग कहाय ॥ १८४ ॥ अपणे स्वरमें आपणा, तत्त्व चले तिणवार ॥ तो रोगीना पिंममां, रोग एक थिर धार ॥ १८५ ॥ स्वरमें दूजा स्वर तणो, प्रश्न करत तत होय ॥ मिश्रजावथी रोगनी, उतपत्ती तस जोय ॥ १८६ ॥ पूरण स्वरथी आयके, पूछे पूरण मांहि ॥ सकलकाज संसारके, पूरण संसय नांहि ॥ १८७ ॥ खाली स्वरमें आयके, पूछे खाली मांहि॥ जे जे काज उन्नी तणो, ते ते होवें नाहिं ॥ १८८ ॥ खाली स्वरमें आयकें, पूछे वहते माहिं ॥ सिद्धकाज कहो तेहनो, यामें डुविधा नांहि ॥ १८९ ॥ पूछे पूरण स्वर तजी, खाली स्वरकी ओड ॥ प्रश्न तास निफल हो, सफल नही विधिकोड ॥ १९० ॥ गुरूवार वायु जलो, शनीदिवस आकाश ॥ चलत तत्त्व इम कायमें, पूरव रोग विनाश ॥ १९१ ॥ प्रात समय बुधवारकूं, क्षिती तत्त्व शुज जाण ॥ सोमवार जल शुक्रकूं, तेज हियेमें आण ॥ १९२ ॥ ससी सूरस्वरमां अबै, करण जोग जे काम ॥ तस वि

चार शुभ कहत हुं, सुखदायक अभिराम ॥ १९३ ॥ देवल श्रीजिनराजनो, नवो निपावे कोय ॥ खात महूरत अवसरें, चंद्रजोग तिहां जोय ॥ १९४ ॥ अमीस्रवत ससि जोगमें, अरुणद्युती थिर होय ॥ करत प्रतिष्ठा बिंबनी, अतिप्रभाव तस जोय ॥ १९५ ॥ तखत मूल नायक प्रभु, बैठावे तिण वार ॥ जिनघर कलश चढावतां, चंद्रजोग सुखकार ॥ १९६ ॥ पोषधशाल निपावतां, दानशाल घर हाट ॥ महेल दूर्ग गढ कोटनो, रचित सुघट धुरघाट ॥ १९७ ॥ संघ माल आरोपतां, करता तीरथ दान ॥ दीक्षा मंत्र बतावतां, चंद्रजोग परधान ॥ १९८ ॥ घर नवीन पुर नगरमें, करता प्रथम प्रवेश ॥ वस्त्र आभूषण संग्रहत, लेत इजारे देश ॥ १९९ ॥ जोगाभ्यास करत शुद्धि, औषध भैषज मीत ॥ खेती बाग लगावता, करता नृपथी प्रीत ॥ २०० ॥ राजतिलक आरोपता, करता गढ परवेश ॥ चंद जोगमें भूपती, विलसे सुख सुदेश ॥ २०१ ॥ राज्य सिंघासन पग धरत, करत और थिर काज ॥ चंद्र योग शुभ जाणजो, चिदानंद महाराज ॥ २०२ ॥

॥ चोपाइ ॥

॥ मठ देवल अरु गुफा बनावे, रतनधातुना घाट

घडावे ॥ इत्यादिक सहु जगमें काम, चंद योगमें अ
ति अभिराम ॥ २०३ ॥ चंद जोग थिर काज प्रधान,
कह्यो तास किंचित अनुमान ॥ स्वरसूरजमें करियें जे
ह, सुणो श्रवण दें कारज तेह ॥ २०४ ॥ विद्या प
ढे ध्यान जो साधे, मंत्र साध अरु देव आराधे ॥
अरजी हाकमके कर देवे, अरिविजयका बीडा लेवें ॥
॥ २०५ ॥ विष अरु भूत उतारण जावे, रोगीकूं जो
दवा खिलावे ॥ विघन हरण शांतिजल नाखे, जो उ
पाय कष्टीकूं भांखे ॥ २०६ ॥ गज वाजी वाहन ह
थियार, लेवे रिपु विजय चितधार ॥ खान पान कीजे
असनान, दीजे नारिकूं रुतुदान ॥ २०७ ॥ नया चो
पडा लिखे लिखावे, वणिज करत कछु वृद्धि आवे ॥
भान जोगमें ए सहुकाज, करत लहे सुखचेन समा
ज ॥ २०८ ॥ नृपति दक्षण स्वरमें कोइ, युद्ध करण
जावे सुण सोइ ॥ रणसंग्राममांहि जस पावे, जीत
अरि पाछो घर आवे ॥ २०९ ॥ सायरमें जे पोत च
लावे, वंछित द्वीप वेगें ते पावे ॥ वेरी भवन गवन पग
दीजें, भानजोगमें तो जस लीजे ॥२१०॥ उंट महीष
गो संग्रह करतां, साट वदत सरिता जल तरतां ॥ कर
जद्रव्य कांहूकुं देतां, भानजोग शुभ अथवा लेतां ॥

॥ २११ ॥ इत्यादिक चर कारज जेते, नान जोगमें करियें तेतें ॥ लाजालान विचारी कहियें, नहिंतर म नमे जाणी रहियें ॥ २१२ ॥ विवाह दान इत्यादि क काज, सौम्य चंद्र जोगें सुखसाज ॥ क्रूरकाममे सूर प्रधान, पूर्व कथित मनमें ते जान ॥ २१३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ चंद्रजोग्य थिर काजकूं, उत्तम महा वखाण ॥
नानजोग चर काजमें, श्रेष्ठ अधिक मन आण ॥१४॥
सुखमन चलत न कीजियें, चर थिर कारज कोय ॥
करत काम सुखमन विषे, अवस हाणि कबु होय ॥
॥१५॥ नवनप्रतिष्ठादिक सहू,वरजित सुखमनमांहि॥
गामांतर जावा नणी, पगला नरियें नांहिं ॥ १६ ॥
डुख दोहग पीडा लहे, चितमे रहे कलेश ॥ चिदा नंद सुखमन चलत, जो कोइ जाय विदेश ॥ १७ ॥
कारजकी हानी हुवे, अथवा लागे वार ॥ अथवा मित्र मिले नही, सुखमन नावविचार ॥ १८ ॥ श्वास शीघ्र अति पालटे, ठीनचंद्र ठिन सूर ॥ ते सुखमन स्वर जाणजो, नाज अनिल नरपूर ॥ १९ ॥ सुखम नस्वर संचारमें, कीजें आतम ध्यान ॥ हिरदगती अ हिनक्की, लहियें अनुनवज्ञान ॥ २० ॥ आतम

तत्त्व विचारणा, उदासीनता जाव ॥ जावतस्वर सुख मन विषे, होवे ध्यान जमाव ॥ २१ ॥ चरथिर तीजीए कही, छिस्वजावकी बात ॥ इण अनुक्रमथी औरजी, कारज सकल कहात ॥ २२ ॥ तत्त्वस्वरूप नीहारवा, कहूं उपाय विचार ॥ जाव शुजाशुज ते हनें, अधिक हियामें धार ॥ २३ ॥ श्रवण अंगूग मध्यमां, नासा पुटपरथाप ॥ नयण तर्ज्जनीथी ढकी, जृकुटीमां लख आप ॥ २४ ॥ पडे बिंडु जृकुटी विषे, पीत श्वेत अरु लाल ॥ नील श्याम जैसी हुवे, तैसी तिहां निहाल ॥ २५ ॥ जैसा वर्ण निहारियें, तैसा तत्त्वविचार ॥ श्वास गतिस्वरमें लखो, इन्बा फुन आकार ॥ २६ ॥ प्रथम वायु स्वरमें वहे, डुतिय अगनि वखाण ॥ त्रीजी जू चोथुं सलिल, जल पंचम मन आण ॥ २७ ॥ वामदिशाथी स्वर उठी, वहे पिंगला मांहि ॥ ताकूं संक्रम कहत है, यामें संशय नाहि ॥ २८ ॥ तत्त्व उदक जू शुज कहे, तेज मध्य फलदाय ॥ हाण मृत्यु दायक सदा, मारुत व्योम कहाय ॥ २९ ॥ ऊर्ध्व अधो अरु मध्य पुट, तीर्ह्वा संक्रमरूप ॥ पंच तत्त्व यह वहत है, जाणो जेद अनूप ॥ ३० ॥ ऊर्ध्वमृत्यु शांति अधो, उच्चाटण तिरि

ढाय ॥ मध्यस्तंभन नभ विषे, वरजित सकल उपाय ॥ ३१ ॥ जंघ मही नाभी अनिल, तेज खंध जल पाय ॥ मस्तकमें नभ जाणजो, दीने थान बताय ॥ ॥ ३२ ॥ थिर काजे परधान भू, चरमें सलिल विचार ॥ पावक सम कारज विषे, वायु उचाटणधार ॥ ॥ ३३ ॥ व्योम चलत कारज सहू, करियें नांहीं मीत ॥ ध्यान जोग अभ्यासकी, धारो यामें रीत ॥ ॥ ३४ ॥ पश्चिम दक्षिण जल मही, उत्तर तेज प्रधान ॥ पूरव वायु वखाणजो, नभ कहियें थिरथान ॥ ॥ ३५ ॥ सिद्धि पृथ्वी जल विषे, मृत्यु अगन विचार ॥ क्षयकारी वायू सिधि, नभनिष्फल चित्तधार ॥ ॥ ३६ ॥ धीरजथी पृथ्वी विषे, जल सिद्धि ततकाल ॥ हाण अगनि वायु थकी, काज निःफल नभ भाल ॥ ३७ ॥ संग्रामादिक कृत्यमें, प्रबल हूतासन होय ॥ चंदसूर संग्रह विषे, फलदायक अतिजोय ॥ ३८ ॥ जीवित जय धन लाभ फुन, मित्र अर्थ जुध रूप ॥ गमनागमन विचारमें, जानो मही अनूप ॥ ॥ ३९ ॥ कलह शोक दुख भय तथा, मरण कहू उत पात ॥ संक्रमभाव समीरमें, फलदृष्टी विख्यात ॥ ४० ॥ राजनाश पावक चलत, पृच्छक नरनी हाण ॥ दुर्नि

क्ष होय महियल विषे, रोगादिक फुनि जाण ॥४१॥ दुर्भिक्ष घोर विग्रह सुधी, देशभंग भय जाण ॥ चलत वायु आकाश तत, चौपद हानि वखाण ॥ ४२ ॥ महेंद्र वरुण जुग जोगमें, घनवृष्टी अति होय ॥ राजवृद्धि परजा सुखी, समो श्रेष्ठ अति होय ॥ ४३ ॥ मही उदक दोउं विषे, चंद्रथान थिति रूप ॥ चिदानंद फल तेहनुं, जाणो परम अनूप ॥ ४४ ॥ मही मूल चिंता लखो, जीव वाय जल धार ॥ तेज धातु चिंता लखो, शुभ आकाश विचार ॥ ४५ ॥ बहुपाद पृथ्वी विषे, जुगपद जल अरु वाय ॥ अग्नि चतुःपद नभ उदे, विगत चरण कहेवाय ॥ ४६ ॥ रवी राहु कुज तीसरो, शनी चतुर्थ वखाण ॥ पंच तत्त्वके भानघर, स्वामी अनुक्रम जाण ॥ ४७ ॥ बुध पृथ्वी जलको ससी, शुक्र अगनि पति मीत ॥ वायु गुरु सुर चंदमें, तत्त्व स्वाम इण रीत ॥ ४८ ॥ स्वामी अपणो आपणो, अपणे घरके मांहि ॥ शुभफल दायक जाण जो, यामें शंसय नांहि ॥ ४९ ॥ जय तुष्टी पुष्टी रती, क्रीडा हास्य कहाय ॥ एम अवस्था चंदनी, षट जल भूमें थाय ॥ ॥ ५० ॥ ज्वर निद्रा परियास पुन, कंप चतुर्थी पिछाण ॥ वेद अवस्था चंदनी, वायु अगनिमें जाण ॥५१॥

प्रथम गतायु दूसरी, मृत्यु नक्षके संग ॥ कही अवस्था चंदनी, द्वादश एम अनंग ॥ ५२ ॥ मधुर कषायल तिक्त पुन, खाटा रस कहवाय ॥ नक्ष अव्यक्त रस पंचके, अनुक्रम दिये बताय ॥ ५३ ॥ जैसा रस आस्वादनीं, होय प्रीत मनमांहि ॥ तैसा तत्त्व पिछाणजो, शंका करजो नांहि ॥ ५४ ॥ श्रवण धनिष्ठा रोहिणी, उत्राषाढ अभीच ॥ज्येष्ठा अनुराधा सपत, श्रेष्ठ महीके बीच ॥५५॥ मूल उत्तरा भाद्रपद, रेवती आर्द्रा जाण ॥ पूर्वाषाढ अरु शतभिषा, आश्लेषा जल गण ॥५६॥ मघा पूरवा फाल्गुनी,पूर्वभाद्रपद स्वात ॥ कृत्तिका भरणी पुष्य ए, सप्त अग्नि विख्यात ॥५७॥ हस्त विशाखा मृगसिरा, पुनर्वसू चित्राय ॥ उत्राफाल्गुण अश्विनी, अनिलधाम सुखदाय ॥ ५८ ॥ नक्षथी पवन पवन थकी, पावक तत परकास ॥ पावकथी पाणी लखो, मही लखो फुनि तास ॥ ५९ ॥ क्रोधादिक अगनी उदे, इछा वायु मझार ॥ क्षांत्यादिक गुण मनविषे, जल भूमांहि विचार ॥ ६० ॥ गुदाधार धरणी तणो,लिंगउदकनो जाण ॥ तेजधार चक्षुसुधी, वायू घ्राण वखाण ॥ ६१ ॥ श्रवण द्वार नक्षना कह्या, शब्दादिक आहार ॥ चिदानंद इण पांचका, जा

णो उर निहार ॥ ६२ ॥ चंद चलत नवि चालियें,जु
द्ध करणकूं मीत ॥ चलत चंदमें तेहना, शत्रुनी हो
य जीत ॥ ६३ ॥ दिवसपति स्वर मांहिजे, युद्धकरणकूं
जाय ॥ विजय लहे संग्राममें, शत्रूसेन पलाय ॥ ६४ ॥
अपना स्वर दक्षण चले, शत्रूना पण तेह ॥ जीत लहे
संग्रामम मे, प्रथम चढे नर जेह ॥ ६५ ॥ ससि चल
तकों नृपति, मत जावो रणमांहि ॥ खेतजीत अरिय
ण लहे, यामें संसय नांहि ॥ ६६ ॥ सुखमन स्वर सं
ग्राममें, जला कहे नवि कोय ॥ जावे सुखमन स्वर
विषे, शीस कटावे सोय ॥ ६७ ॥ दूरदेश संग्राममें, जा
ता शशी परधान ॥ निकट युद्धमें जाणजो,जयकारी
स्वर जान ॥ ६८ ॥ सनमुख उर्द्धदिशा रही, जुद्धप्रश्न
करे कोय ॥ सम अक्षर ससि स्वर हूआ, जीत तेहनी
होय ॥ ६९ ॥ पूठें दक्षण मध्यथी, दूत प्रश्न करे जे
ह ॥ विषमाक्षर जानु हुआं, खेत विजय लहे तेह ॥
॥ ७० ॥ युद्धयुगलनी पूर्णदिशि, रही प्रश्न करे कोय ॥
प्रथम नाम जस उच्चरे, जीत लहे नर सोय ॥ ७१ ॥
रिक्तपक्षमें आयकें, मिथुन युद्ध परसंग ॥ पूछत पहेला
हारियें, दूजा रहत अभंग ॥ ७२ ॥ करत युद्ध परिया
णवा, रिक्त मांहे लहे हार ॥ अल्पबली नृपति थकी,

महाबली चित्त धार ॥ ७३ ॥ महाकटक सनमुख च
ले, थोडासा दल जोड ॥ पूरण तत्त्व प्रकाशमें, जीत
लहे विधि कोड ॥७४ ॥ महीतत्त्वमें युद्धवा, करे प्रश्न
परियाण ॥ दोउ दल सम उतरे, इम निह्चे करी जा
ण ॥ ७५ ॥ करे प्रश्न परियाणवा, वरुण तत्त्वकें मां
हि ॥ होय मेल तिहां परस्परि, युद्ध जाणजो नांहि
॥ ७६ ॥ मही उदक होय एककूं, दूंजाकूं जो नांहि
॥ महीवरुण तिहां जीतीयें, यामें संसय नांहि
॥ ७७ ॥ प्रश्न करे अथवा लडे, अथवा करे प्रयाण
॥ वहत हुताशन तेहनी, रणमे होवे हाण ॥ ७८ ॥
प्रश्न प्रयाण युध जे करे, अनिल तत्वमें कोय ॥
निश्चेंथी संग्राममें, नागे पहेला सोय ॥ ७९ ॥
व्योम वहत कोउ नृपती, करे प्रश्न परियाण ॥ अ
थवा युद्ध तिण अवसरे, करत मरण तस जाण ॥
॥ ८० ॥ चंद्र चलत नृपति मरण, सम जोधा रवि
मांहि ॥ वायु वहत नंजे कटक, संशय करजो नांहि
॥ ८१ ॥ नाम धेय सदृश कही, पूछे पूरण मांहि ॥
प्रथम नामजस उच्चरे, तस जय संशय नांहि ॥८२॥
रणमें जे घायल हूवे, तेहनी पूछे वात ॥ चिदानंद
ते पुरुषकुं, उत्तर एम कहात ॥ ८३ ॥ आपणी दि

शथी आयकें, पूछे पूरण मांहि ॥ जास नाम कहे तास सुण, घाव जाणजों नांहि ॥ ७४ ॥ पूछे खाली स्वरविषे, घायलका परसंग ॥ जस पूछे तस रण विषें, घाव कहीजे अंग ॥ ७५ ॥ पृथ्वी उदर बताश्यें, जल चलता पग जाण ॥ पावक उर हिरिदें विषे, वायु जंघा वखाण ॥ ७६ ॥ घाव शीसमें जाणजो, चलत तत्त्व आकाश ॥ स्वरमें तत्त्व विचारके, पृछककूं इम जाष ॥ ७७ ॥ पूरण प्राण प्रवाहमें, निज तत घर स्वर होय ॥ प्रबल जोग आवी मल्यां, सुखें विजय लहे सोय ॥ ७८ ॥ आपणे स्वर जल तत्व है, शत्रुकूं नहि होय ॥ रिपू मरण निज हाथथी, जीत आपणी होय ॥ ७९ ॥ गर्नतणा परसंग अब, सुणजो चित्त लगाय ॥ स्वर विचार तासुं कहो, जो कोइ पूछे आय ॥ ८० ॥ क्लीब कन्यका सुत जनम, गर्न पतनवा धार ॥ दीर्घ अल्प आयुतणा, जाखो एम विचार ॥ ८१ ॥ चंड् चलत पूछे कोउ, पूरणदिशिमें आय ॥ गर्नवतीना गर्नमें, तो कन्या कहिवाय ॥ ८२ ॥ दिवसपति पूरण चलत, पूछे पूरणमांहि ॥ पुत्र पेटमें जाणजो, यामें संशय नांहि ॥ ८३ ॥ स्वर सुखमनमें आयके, पूछे गर्न विचार ॥ नारिकेरी कूखमें, गर्न नपुं

सक धार ॥ ए४ ॥ नान चलत पूछे कोउ, वाकूं चंदा होंय ॥ पुत्र जनम तो जाणजो, पण जीवे नहिं सोय ॥ ए५ ॥ दिवसपति संचारमें, करे प्रश्न कोइ आय ॥ स्वर सूरज वाकुं हुआं, सुखदायक सुत थाय ॥ए६॥ करे प्रश्न ससि स्वर विषे, वाकुं जो रवि होय ॥ होय सुता जीवे नही,कहो एम तस जोय ॥ए७॥ चंद चलत आवी कहे, वाकु चंद उद्योत ॥ कन्या निश्चे तेहने, दीर्घ स्थिति धर होत ॥ ए८ ॥ चलत मही सुत जाणजो, प्रश्नकरत तिणवार ॥ राजमान सुखिया घणा,रूपें देव कुमार ॥ एए ॥ उदक तत्त्वमें आयके, करे प्रश्न जो कोय ॥ सुत सुखिया धनवंत तस, षटरस नोगी होय ॥ ३०० ॥ तत्त्व युगल जे नान घर, चलत पुत्र पहिगाण ॥ निसानाथ घर होय तो, कन्या हिरिदें आण ॥ ३०१ ॥ पूछत पावक तत्त्वमें,गर्नपतन तस होय ॥ जनमे तो जीवे नही, विगतपुण्य नर सोय ॥ ३०२ ॥ प्रश्न प्रनंजन तत्त्वमें,करतां गाया होय ॥ अथवा विङ्ग विचारजो, गले गर्नमें सोय ॥ ३०३ ॥ पूछत ननपरकासमें, गर्न नपुंसक जाण ॥ चलत चंद कन्या कहो, वांऊ नाव चित्त आण ॥ ३०४ ॥ शून्य युगल स्वर मांहिजो, गर्न प्रश्न करे कोय ॥ ताथी

निश्चय करी कह्यो,कन्या उपजे दोय ॥ ३०५ ॥ चंद सूर दोउ चलत, चंद होय बलवान ॥ गर्भ वतीना गर्भमें, सुता युगल पहिचान ॥ ३०६ ॥ चंद सूर दोउं चलत, रवी होय बलवान ॥ गर्भवतीना गर्भमें, पुत्र युगल पहिचान ॥ ३०७ ॥ जौण तत्त्व में नारिकूं, रहे गर्भउधान ॥ अथवा जनमें तेह नो, फल अनुक्रम पहिचान ॥ ८ ॥ राज्यमान सुखिया माहा, अथवा आपहू नूप ॥ रहे गर्भ धरणी चलत, होवे काम सरूप ॥ ए ॥ धनवंता भोगी भमर, चतुर विचक्षण तेह ॥ नीतवंत नारी गरभ, जल चलतां रहे जेह ॥ १० ॥ रहे गर्भ पावक चलत, अल्प उमर ते जाण ॥ जीवे तो दुखिया हुवे, जन्मत माता हाण ॥ ११ ॥ दुखी देश भ्रमण करे, विकल चित्त बुद्धि हीण ॥ रहे गर्भ जो वायुमें, इम जाणो परवीण ॥ १२ ॥ रहे गर्भ नभ चालतां, गर्भ तणी होय हाण ॥ जन्म तणो फल तत्त्वमें, इणहि अनुक्रम जाण ॥ १३ ॥ सुत पृथ्वी जलमें सुता, चलत प्रभंजन जाण ॥ गर्भ पतन पावक विषे, क्लिव गगन भन आण ॥ १४ ॥ अपना अपना स्वर विषे, है परधान विचार ॥ तत्त्वपक्ष अविलोकतां, ये बी

जा निरधार ॥ १५ ॥ संक्रम अवसर आयके, प्रश्न करे जो कोय ॥ अथवा गर्भ रहे तदा, नास अवश्य तस जोय ॥ १६ ॥ कह्या एम संक्षेपथी, गर्भतणा अधिकार ॥ करत गमन परदेशमें, ताका कहुं विचार ॥ १७ ॥ दक्षण पश्चिमदिशि विषे, चंद्र जोगमें जाय ॥ गमन रहे परदेशमें, सुख विलसें घर आय ॥ ॥ १८ ॥ पूरव उत्तर दिश विषे, भानु योग बलवंत ॥ वंछित दायक कहत है, जे स्वर वेदी संत ॥ १९ ॥ विदिशि आपणी आपणी, अपणा घरमें लीन ॥ शुभ अरु इतर उभय विषे, समज लेहु परवीन ॥ २० ॥ चलत चंद नवि जाइयें, पूरव उत्तर देश ॥ गया न पाछा बाहुडे, अथवा लहे कलेश ॥ २१ ॥ दक्षिण पश्चिम मत चलो, भान जोगमे कोय ॥ मरे न तोहु मरण सम, कष्ट अवस तस होय ॥ २२ ॥ दूर गमनमें सर्वदा, प्रबल जोग चित्तधार ॥ निकट पंथमें मध्यहु, जाणीजे सुखकार ॥ २३ ॥ तत्त्व युगल शुभ है सुधी, करत प्रश्न परियान ॥ नाम तेहनुं चित्तमें, मही उदक मन आण ॥ २४ ॥ उर्ध्व दिशापति चंद है, अधो दिशापति भान ॥ क्रूर सोम्य कारज लखी, गमन भाव पहिचान ॥ २५ ॥ सुखमन चलत न कीजीयें, शुद्धि

प्रदेश प्रयाण ॥ जावे तो जीवे नही, कारज हानि
पिछाण ॥ २६ ॥ तत्त्व पंचके गमनमें, होत भंग प
चवीश ॥ देशिक ग्रंथ करी सदा, बीतत जाण जो
तीष ॥ २७ ॥ जे नर वसत विदेसमें, ताकी पूछे
वात ॥ सुखी आहे अथवा दुःखी, ताथी एम कहा
त ॥ २८ ॥ उदक तत्त्वजो होय तो, कहो तास ध
रि नेह ॥ सुखें सिद्ध कारज करी, वेगो आवे तेह ॥
॥ २९ ॥ होय महीस्वरमें उदे, पूछे प्रश्न तिवार ॥
तो थिर थानिक भांखीयें, दुख नहि तास लगार ॥
॥३०॥ परवासि निज थान तजी, गया दूंसरे धाम॥
कछु चिंता चित तेहने, चलत वायु कहो आम ॥३१॥
रोग पीड तनमें महा, पावक चलत वखाण ॥ नन्न
प्ररकाश विदेशमें, मरण अवश तस जाण ॥ ३२ ॥
सूरविषम ससिमांहि सम, पगलां भरतां मीत ॥ वार
तिथि इणविध करत, होवे सुण तस रीत ॥ ३३ ॥
चंदचलत आगल धरी, भावा पगला चार ॥ गमन क
रत तिण अवसरे, होय उदधिसुतवार ॥ ३४ ॥ स्वर
सूरजमें जीमणा, पग आगल धरें तीन ॥ चलत ग
मनमें होत है, दिनकर वार प्रवीन ॥ ३५ ॥ स्वर वि
चार कारज करत, सफल होय ततकाल ॥ तत्त्वज्ञा

न एह्नां कह्या, चमत्कार चित्तलाल ॥ ३६ ॥ तिथि वार नक्त्र फुनि, करणयोग दिग् शूल ॥ लक्षणपात होरा लिये, दग्धतिथी अरु मूल ॥ ३७ ॥ वृष्टिकाल कुलिका लगन, व्यतिपात स्वरजान ॥ शुक्र अस्त अरु जोगणी, यमघंटादिक जान ॥ ३८ ॥ इत्यादिक अप योगको, यामें नही विचार ॥ ऐसो ए स्वर ज्ञान नित, गुरुगमथी चित्तधार ॥ ३९ ॥ विगत उदक सर हंसविण, काया तरुविन पात ॥ देव रहित देवलय था, चंद्र विना जिम रात ॥ ४० ॥ शोजित नवि तप विण मुनि, जिम तप सुमता टार ॥ तिम स्वर ज्ञान विना गणक, शोजत नहिय लगार ॥ ४१ ॥ साधन विन स्वर ज्ञानको, लहे न पूरण जेद ॥ चिदानंद गुरु गम विना, साधनहु तस खेद ॥ ४२ ॥ दक्षण स्वर जोजन करे, मावे पीयें नीर ॥ मावी कर खट सूवतां, होय निरोग शरीर ॥ ४३ ॥ चलतचंद जोजन करत, अथवा नारी जोग ॥ जलपीवे सूरज विषे, तो तन नावे रोग ॥ ४४ ॥ होय अपच जोजन करत, जोग करत बलहीण ॥ जल पीवत विपरीत इम, नेत्रादिक बलक्षीण ॥ ४५ ॥ पांच सात दिन इणीप रे, चलेरीत विपरीत ॥ होय पीड तनमें कछु, जाणो

धरि परतीत ॥४६॥ बहिरजूमि इंगला चलत, पिंगला में लघु नीत ॥ सयनदिसा सूरज विषे, करियें निसदिन मीत ॥ ४७ ॥ दिवस चंदस्वर संचरे, निशा चलावे सूर ॥ स्वर अभ्यास एसो करत, होय उमर जरपूर ॥ ४८ ॥ कथितजाव विपरीत जो, स्वर चाले तनमांहि ॥ मरण निकट तस जाणजो, या में संसय नांहि ॥ ४९ ॥ सार्द्ध युगल घटिका चले, चंदसूर स्वरवाय ॥ स्वास त्रयोदश सुखमना, जाणो चित्त लगाय ॥ ५० ॥ अष्ट पहर जो जानघर, चले निरंतर वाय ॥ तीन वरसका जीवणा, अधकि रहे न काय ॥ पाठांतरे ॥ यामे संशय नांहि ॥ ५१ ॥ चले निरंतर पिंगला, षोडश प्रहर प्रमान ॥ दोय वरस काया रहे, पीछे जावे प्रान ॥ ५२ ॥ जान निरंतर जो चले, रातदिवस दिन तीन ॥ वरस एक रही होय फुनि, दीरघ निद्रा लीन ॥ ५३ ॥ शोलशदिन जो जानघर, चले रातदिन स्वास ॥ चिदानंद निश्चल करी, जीवें ते इक मास ॥ ५४ ॥ मास एक अहनिसि वहे, सूरज स्वर तन मांहि ॥ दोय दिनाका जीवणा, यामे शंसय नांहि ॥ ५५ ॥ चले निरंतर सुखमना, पांच घडी स्वर जाल ॥ पांच

घडी सुखमन चलत, मरन होय ततकाल ॥ ५६ ॥
नही चंद सूरज नही, सुखमनजी नही होय ॥ मुख
सेंती स्वासा चलत, चार घडी थिति जोय ॥ ५७ ॥
दिनमें तो ससि स्वर चले, निशा जान परकाश ॥
चिदानंद निश्चै अती, दीरघ आयू तास ॥ ५८ ॥
दिवानाथ होय दिवसमें, निसा निसाकर स्वास ॥
चिदानंद षटमास तस, जीवितव्यनी आश ॥ ५९ ॥
चार आठ द्वादश दिवस, षोडश वीश विचार ॥
चलत चंद निसमेव इम, आयूदीरघ धार ॥ ६० ॥
रात दिवस जो तीन दिन, चले तत्त्व आकाश ॥ व
रसदिवस कायाथिति, तिस उपरांत विनाश ॥ ६१ ॥
अहोराति दिन चारजो, चले तत्त्व आकाश ॥
थिरता तनकी जाणजो, उत्कृष्टी षटमास ॥ ६२ ॥
अरुणधृती ध्रुवबालिका, मातृमंमले जोय ॥ ए
चारुं नवि लखी शके, आयु हीन नरकोय ॥ ६३ ॥
जिह्वां नाशा अग्रेफुनि, भ्रू को मध्य विचार ॥ स्वर
जोयण कीकी कही, अनुक्रमथी चित्तधार ॥ ६४ ॥
रसना ससि दिवस थिति, घ्राण हुतासन जान ॥ स
प्तबालिका तारका, कालमान पहिचान ॥ ६५ ॥ ल
घुनीति वडिनीत पुन, वायुश्रव समकाल ॥ होय दि

वस दस तेहनी, कायथिति बुधनाल ॥ ६६ ॥ गाज बीज दोउ नही, मेघ न खंचे धार ॥ कागवास आ वास तस, हंसागमन विचार ॥ ६७ ॥ अधिक चंद सुख नालजस, चलत कायमें जान ॥ चंदसूर दोउ गया, मरन समो पहिचान ॥ ६८ ॥ एक पक्ष विपरीत स्वर, चलत रोग तन थाय ॥ दोउ पक्ष सज्जन अरि, त्रीजे मरण कहाय ॥ ६९ ॥ अग्नि बाण बिंदू लखण, इत्यादिक बहुरीत ॥ काल प रिक्षाकी सहू, जाणो गुरुगम मीत ॥ ७० ॥ अवसर निकट मरण तणो, जब जाणे बुधलोय ॥ तब विशे ष साधन करे, सावधान अतिहोय ॥ ७१ ॥ धर्मअ र्थरु काम शिव, साधन जगमें चार ॥ व्यवहारें व्यव हार लख, निहचे निजगुणधार ॥ ७२ ॥ मूरख कुल आचारकूं, जाणत धरम सदीव ॥ वस्तुस्वनाव धरम सुधि, कहत अनुनवी जीव ॥ ७३ ॥ खेह खजानाकूं अरथ, कहत अज्ञानी जीह ॥ कहत द्रव्य दरसावकूं, अर्थ सुज्ञानी जीह ॥ ७४ ॥ दंपतिरति क्रीडा प्रत्यें, कहत डुर्मति काम ॥ कामचित्त अनिलाखकूं, कहत सुमति गुणधाम ॥ ७५ ॥ इंद्रलोककूं कहत शिव, जे आगमहग हीण ॥ बंधअनाव अचलगति, नाखत

नित परवीन ॥७६॥ इम अध्यातम पदलखि, करत साधना जेह ॥ चिदानंद निज धर्मनो, अनुनव पावे तेह ॥ ७७ ॥ समयमात्र परमाद नित, धर्म साधना मांहि ॥ अथिररूप संसार लख, रे नर करियें नांहि ॥७८॥ छीजत छिनछिन आउखो, अंजलि जल जिम मीत ॥ कालचक्र माथे नमत, सोवत कहा अनीत ॥ ७ए ॥ तन धन जोवन कारिमा, संध्या राग समान ॥ सकलपदारथ जगतमें, सुपन रूप चित्तजान ॥ ८०॥ मेरामेरा मत करे, तेरा है नही कोय ॥ चिदानंद परिवारका, मेला है दिनदोय ॥८१॥ ऐसा नाव निहारी नीत, कीजें ज्ञान विचार ॥ मिटे न ज्ञान विचार बिन, अंतरनाव विकार ॥ ८२ ॥ ज्ञानरवि वैराग जस, हीरिदे चंद समान ॥ तास निकट कहो किम रहे, मिथ्या तम दुखखान ॥ ८३ ॥ आप आपणे रूपमें, मगन ममत मलखोय ॥ रहे निरंतर समरसी, तास बंध नविकोय ॥ ८४ ॥ परपरणित परसंगशुं, उपजत विणसत जीव ॥ मिथ्यो मोह परनाव के, अचल अबाधित शिव ॥ ८५ ॥ जैसे कंचुक त्यागथी, विणसत नही नुयंग ॥ देह त्यागथी जीव पण, तैसे रहत अनंग ॥८६॥ जो उपजे सो तुं नही, विणसत

तेपण नांहि ॥ छोटा महोटा तुं नही,समज देख दि लमांहि ॥८७॥ वरणजाति तोमें नही, जात पात कुल रेख ॥ रावरंक तूं है नही , नही बाबा नही भेख ॥८८॥ तुं सहुमें सहुथी सदा,न्यारा अलख सरूप ॥ अकथ कथा तेरी महा,चिदानंद चिद्रूप ॥ ८९॥ जनम मरण जिहां है नही, ईत भीत लवलेश ॥ नहीं शिर आण नरिंदकी, सोही अपणा देश ॥ ९० ॥ विना शिक पुदगल दिशा, अविनाशी तुं आप ॥ आपा आ प विचारतां, मिटे पुण्य अरु पाप ॥९१॥ बेडी लोह कनक मयी, पाप पुण्य युग जाण ॥ दोउथी न्यारा सदा, निज सरूप पहिछाण ॥ ९२ ॥ जुगलगती शुभ पुण्यथी, इतर पापथी जोय ॥ चारुं गति निवारियें, तब पंचमगति होय ॥९३॥ पंचमगति विण जीवकूं, सुख तिहुं लोक मजार ॥ चिदानंद नवि जाणजो, ए महोटो निरधार ॥ ९४ ॥ इमविचार हीरिदे करत, ज्ञान ध्यान रस लीन ॥ निरविकल्प रस अनुंभवी,वि कल्पता होय छीन ॥ ९५ ॥ निरविकल्प उपयोगमें, होय समाधि रूप ॥ अचलज्योति जलके तिहां, पावे दरस अनूप ॥ ९६ ॥ देख दरस अद्भुत महा, काल त्रास मिट जाय ॥ ज्ञानयोग उत्तम दिशा, सदगुरु

दीये बताय ॥ ए७ ॥ ज्ञानालंबन दृढ ग्रही, निरालंब
ता नाव ॥ चिदानंद नित आदरो, एहिज मोक्ष उपा
व ॥एए॥ थोडासामें जाणजो, कारज रूप विचार ॥
कहत सुणत श्रुतज्ञानका,कबहुं न आवे पार ॥एए॥
में मेरा ए जीवकूं, बंधन महोटा जान ॥ में मेराजाकुं
नही, सोही मोक्ष पीछान ॥४००॥ में मेरा ए नावथी,
वधे रागअरुरोष ॥ रागरोष जौंलों हिये, तौंलों मिटै
न दोष ॥४०१॥ रागद्वेष जाकूं नहीं, ताकुं कालन खा
य॥कालजीत जगमें रहे, महोटा बिरुद धराय ॥४०२॥
चिदानंद नित कीजीयें, समरण श्वासोश्वास ॥ वृथा
अमूलक जात है, श्वास खबर नही तास ॥ ४०३ ॥
एक महूरत मांहि नर, स्वरमें श्वास विचार ॥ तिहुंतर
अधिका सातसो, चालत तीन हजार ॥४०४॥ एक
दिवसमें एकलख, सहस त्रयोदश धार ॥ एकशत ने
वु जात है, श्वासोश्वास विचार ॥ ४०५ ॥ मुनिशत
सहस पंचाणवे, लाखे तेत्रीशलाख ॥ एक मासमें
श्वास इम, एहवी प्रवचन शाख ॥ ४०६ ॥ चउसत
अडताली सहस, सप्तलक्ष स्वरमांहि ॥ चारक्रोड इक
वरसमां, चालत शंसय नांहि ॥ ४०७ ॥ चार अब
ज कोडी सपत, पुनः अडतालीस लाख ॥ स्वास स

ह्स चालीस सुधि, सो वरसांमें लाख ॥ ४०८ ॥ व
र्त्तमान ए कालमें, उत्कृष्टी थिति जोय ॥ एक शत
शोले वर्षनी, अधिक न जीवे कोय ॥ ४०९ ॥ सोप
क्रम आयु कह्यो, पंचमकाल मजार ॥ सोपक्रम आ
यु विषे, घात अनेक विचार ॥ ४१० ॥ मंदस्वास स्व
रमें चलत, अल्प उमर होय खीण ॥ अधिक स्वा
स चालत अधिक, हीण होत परवीण ॥ ४११ ॥
चार समाधि लीन नर, षट शुलध्यान मजार ॥ तुष्णा
लाव बेग जु दस, बोलत द्वादश धार ॥ ४१२ ॥
चालत सोलस सोवतां, चलत स्वास बावीश ॥ ना
रि लोगवतां जाणजो, घटत स्वास छत्रीश ॥ ४१३ ॥
थोडी वेला मांहे जस, वहत अधिक स्वर श्वास ॥
आयु छीजे बल घटे, रोग होय तन तास ॥ ४१४ ॥
अधिका नांहि बोलियें, नही रहिये पड सोय ॥ अति
सीघ्र नवि चालियें, जो विवेक मन होय ॥ ४१५ ॥
जाण गति मन पवनकी, करे स्वास थिररूप ॥ सो
ही प्राणा यामको, पावे लेद अनूप ॥ ४१६ ॥ मे
रु रुचक प्रदेशथी, सूरतफोरकुं पोय ॥ कमलबंध छो
ड्या थकां, अजपा समरण होय ॥ ४१७ ॥ लमर गु
फामें जायके, करे अनिलकूं पान ॥ पछे हुतासन ते

ह्ने, मिले दसम अस्थान ॥ ४१८ ॥ मारगमें जातां थकां, जे जे अचरिज थाय ॥ शांतदशामें वर्त्तता, मुखथी कही न जाय ॥ ४१ए ॥ वधे जावना चित्त में, तन मन वचन अतीत ॥ तिमतिम सुख सायर तणी, ऊठे लहेर सुणमीत ॥ ४२० ॥ इंद्रतणा सुख जोगतां, जे तृप्ति नवि थाय ॥ ते सुख सुण छिन एकमें, मिले ध्यानमें आय ॥ ४२१ ॥ ध्यानविना नवि लखि शके, मन कल्लोल स्वरूप ॥ लख्याविना किम उपशमे, येहूजेद अनूप ॥ ४२२ ॥ आसण पद्म लगायके, मूलबंध दृढ लाय ॥ मेरुदंम सीधा करे, जेद द्वारकों पाय ॥ ४२३ ॥ करे स्वास संचार तव, विकलप जाव निवार ॥ जिमजिम थिरता उपजे, तिमतिम प्रेम वधार ॥ ४२४ ॥ प्रेमविना नवि पाइयें, करता जतन अपार ॥ प्रेम प्रतीतें है निकट, चिदानंद चित्तधार ॥ ४२५ जो रचना तिहुं लोकमें, सो नर तन में जान ॥ अनुजव विण होवे नही, अंतर तास पीछान ॥ ४२६ ॥ अंतरजाव विचारतां, मनवायु थिर थाय ॥ तिमतिम नाजी कमलमें, पूरक थइ समाय ॥ ४२७ ॥ नाजी स्वास समायके, उर्द्ध रेचसि होय ॥ अजप जाप तिहां होतहै, विरला जाणे कोय

॥ ४२८ ॥ हंकारेस्वर उक्त है, थइ संकार समाय ॥ अजपजाप तिहां होत है, दीनो भेद बताय ॥४२९॥ जोगार्णवथी जाणजो, अधिक भाव चित्तलाय ॥ था य ग्रंथ गोरव घणो, तातें कह्या न जाय ॥ ४३० ॥ देहिमध्य नाडी तणो, बहू रूप विस्तार ॥ पिंम स्वरू प निहारवा, जाणो तास विचार ॥४३१॥ वटशाखा जिम विस्तरी, नाभी कंदथी जेह ॥ भेदहुतासन जा णजो, पान निसा तिम तेह ॥ ४३२ ॥ अह भुजंगा कार ते, वलय अढाइ तास ॥ जाण कुंमलि नाडितें, नाभी मांहे निवास ॥ ४३३ ॥ उर्ध्वगामिनी तेहथी, नाडी दश तन मांहि ॥ अधोगामिनी दश सुगुण, ल घु गणित कछु नांहि ॥ ४३४ ॥ दो दो तिरछी सहुम ली, चतुर्विंशति जाण ॥ दश वायू परवाहिका, दश प्र धान मन आण ॥ ४३५ ॥ इंगला पिंगला सुखमना, गांधारी कहिवाय ॥ हस्त जीह पंचमसुधी, पुष्या देइ बताय ॥ ४३६ ॥ सप्तम जाण यशस्विनी, अलंबुखा चित्त धार ॥ कहु संखणी नाडीए, दशके नाम वि चार ॥ ४३७ ॥ वामभाग हे इंगला, पिंगला दक्षण धार ॥ नासा पुटमें संचरत, सुखमन मध्य निहार॥ ॥ ४३८ ॥ वामचक्षु गंधारिका, दक्षिण नयन मजा

र ॥ हस्त जीह पुष्या सुधी, दक्षण कान प्रचार ॥
॥ ४३९ ॥ वामे कान यशस्विनी, अलंबुखा मुखथा
न ॥ कहु लिंग अस्थान है, गुदा संखणी जाण ॥
॥ ४४० ॥ दिग धमणी ये कायमें, प्राणाश्रित नित जा
ण ॥ वायु आश्रित जे रही, ते दश कहूं वखाण ॥
॥ ४४१ ॥ प्राणापान समान जे, उद्यान अव्हान वि
चार ॥ ये प्रधान वायु धमण, पंच अनुक्रम धार ॥
॥ ४४२ ॥ नाग कूर्म अरु किरकरा, देवदत्त कहिवा
य ॥ नाडी धनंजय पांचमी, गवणि दीन बतलाय ॥
॥ ४४३ ॥ हिया गुदा नाभि गला, तन संधि चित्त
धार ॥ प्राणादिकनी इणपरें, अनुक्रम वास विचार ॥
॥ ४४४ ॥ नागवायु परकाशथी, प्रगट होय उजार
कूर्मवायु नाडी उदे, उन्मीलन चित्तधार ॥ ४४५ ॥
छीक किरकराथी हूवे, देवदत्त परकाश ॥ जंभायें आ
वे सुथिर, जाण धनंजय वास ॥ ४४६ ॥ इत्यादिक
नाडी तणो, कह्यो अल्प विस्तार ॥ अधिक हियामें
धारजो, गुरुगम तास विचार ॥ ४४७ ॥ जब स्वर
बाहिरकूं चले, तब कोइ पूछे आय ॥ कोटी यतनथी
तेहनो, कारज सिद्ध न थाय ॥ ४४८ ॥ स्वर भीतर
कों चालतां, आवी पूछे कोय ॥ कोटी भांति करी ते

हना, कारज सिद्ध न थाय ॥ ४४ए ॥ पंच तत्त्वजो ये कहे, तेतो संज्ञा रूप ॥ इन उपर जे मत ग्रह्यो, तेतो मिथ्या कूप ॥ ४५० ॥ आमनायये हे सुधी, स्वर विचारके काज ॥ सम्यग् दृगथी जो ग्रहे, सो लहे सुख समाज ॥ ४५१ ॥ कह्यो एह शंक्षेपथी, ग्रंथ स्वरोदय सार ॥ जणे सुणे ते जीवकूं, चिदानंद सुखकार ॥ ४५२ ॥ कृष्णासाढी दशमि दिन, शुक्रवार सुखकार ॥ निधि इंदू सर पूरणता, चिदानंद चित्तधार ॥ पागंतर ॥ संवत्सर मुनिपूर्णता, नंद चंद चित्तधार ॥ १ए०७ ॥ ४५३ ॥ इति श्रीकपूरचंदजी महाराज कृत स्वरोदय ज्ञान संपूर्णम् समाप्त ॥

श्रीहरीयाली प्रारंनः ॥

॥ सखीरे मेंतो कौतुक दीठुं, साधु सरोवर जीलता रे ॥ स० ॥ नाकें रूप निहालता रे ॥ स० ॥ लोचन थी रस जाणता रे ॥ १ ॥ स० ॥ मुनिवर नारीशुं रमे रें ॥ स० ॥ नारि हिंचोले कंतनें रे ॥ स० ॥ कंत घणा एक नारिनें रे ॥ स० ॥ सदा यौवन नारी तें रहे रे ॥ २ ॥ स० ॥ वेश्या विलुब्धा केवली रे ॥ स० ॥ आंख विना देखे घणु रे ॥ स० ॥ रथबेग मुनिवर

चले रे ॥स०॥ हाथजलें हाथ मूबीयो रे ॥३॥स०॥ कुतरीयें केशरी हण्यो रे ॥ स० ॥ तरस्यो पाणी नवी पीये रे ॥ स० ॥ पगविहूणो मारग चले रे ॥ स० ॥ नारी नपुंसक नोगवे रे ॥ ४ ॥ स० ॥ अंबाडी खर ऊपरें रे ॥ स० ॥ नर एक नित्य ऊनो रहे रे ॥स०॥ बेगो नथी नवि बेसशे रे ॥ स० ॥ अधर गगन विच ते रहे रे ॥ ५ ॥ स० ॥ माकडे महाजन घेरीयो रे ॥ स० ॥ उंदरें मेरु हलावीयो रे ॥ स० ॥ सूरज अ जवालुं नवि करे रे ॥ स० ॥ लघु बंधव बत्रीश गया रे ॥ ६ ॥ स० ॥ सोकें घडी नही बेनडी रे ॥ स० ॥ शामलो हंस में पेखीयो रे ॥ स० ॥ काट वल्यो कंच नगिरी रे ॥ स० ॥ अंजनगिरी उजला थया रे ॥ ७ ॥ स० ॥ तोहे प्रनु न संनारीया रे ॥ स०॥ वयरस्वा मी सूता पालणे रे ॥ स० ॥ श्राविका गावे हालडा रे ॥स०॥ मोटा अर्थ ते कहेजो रे ॥स०॥ श्रीशुन वी रना वालडा रे ॥ ८ ॥ इति हरीयाली संपूर्ण ॥

समाप्त ॥

॥ अथ ॥
॥ श्रीपंचपरमेष्ठि मंत्रराज ध्यानमाला ॥

॥ ढाल पहेली ॥ चोपाइनी देशी ॥

श्रीजिनवाणी प्रणमन करी, सिद्धचक्र
भालस्थल धरी ॥ शुद्धातम छे महा
कल्याण, ते ग्रहवाने थाउ जाण ॥ १ ॥

अर्थः– श्री एटले चोत्रीश अतिशयरूप लक्ष्मी तेनी शोभा युक्त, जिन एटले राग द्वेषादि रिपुने जीतनारा एवा जे श्रीअरिहंत देव तेमनी वाणी जे सरस्वती देवी तेने प्रणमन करीने वली श्रीअरिहंतादिक नवपदना समुदायरूप जे श्रीसिद्धचक्र तेने भालस्थल जे ललाट तेणें करीने प्रणाम करी अथवा पुरुषाकार जे चौदराज लोक छे तेनुं भालस्थल जे ललाट ते स्थानकें श्रीसिद्धचक्रने धरीयें एवो सिद्धरूप शुद्धात्मा माहाकल्याणमय कर्मकलंक टाली शोधीने सुवर्णरूप थयो ते स्वरूप ग्रहवाने हे प्राणीयो! तमें जाण थाउ ॥ १ ॥

प्रगटे शुचि अनुभवनी ज्योति, नासे तव
मिथ्यामत छोति ॥ शुद्धातम अवलोकन क
रुं, दृढ भावें एहिज चित्त धरुं ॥ २ ॥

अर्थः— जेवारें शुचि एटले निर्मल एवो अनुभव एटले आत्मज्ञान तेनी ज्योति प्रगटे, तेवारें मिथ्यामत रूप छोती एटले मलिनता ते नाश पामे, तेथी करीने निष्कलंक एवो जे शुद्धात्मा तेनुं सामान्य विशेषपणे अवलोकन करुं! एटले तेने जोउं! विचारुं! एवोज दृढभाव चित्तमां धरी राखुं एवी रुचिथइ ॥ २ ॥

हवे एवी रुचि जे थइ, ते केम जाणवामां
आवे ? ते कहे छे.

वचन विवेक विनय शुद्धि करी, तिणथी मि
थ्यामति अपहरी ॥ प्रगट्यो शुभ संकल्प
प्रधान, आप्युं प्रथम शुद्धातम ध्यान ॥ ३ ॥

अर्थः—वचन, विवेक अने विनय, ए त्रणनी शुद्धि करते रुचि थइ तेनाथी मिथ्याभाव जे भ्रांति विपर्यास ते रूप मति अपहराणी नाश पामी, तेवारें प्रधान शुभ संकल्प प्रगट्यो, तेणें प्रथम शुद्धात्मानुंज ध्यान

चित्तने आप्युं, अशुभ संकल्पथी निवार्युं ॥ ३ ॥
एवो थयो त्यारें कहेनुं अवलंबन करे? ते कहे छे.

वीतरागदोषी निकलंक, नहिं विकल्प म
द मान ने वंक ॥ तेह निरंजन निर्मल गु
णी, प्रथम आलंबनशुं रति बनी ॥ ४ ॥

अर्थः— वीत एटले गया छे राग अने दोष ए टले द्वेष जेनाथकी ते वीतराग कहियें अर्थात् जेराग द्वेष रहित पणे करी निष्कलंक थया छे. वली जेमां मद ते प्राप्त वस्तुनो गर्व अने मान ते अप्राप्त वस्तु नो उत्कर्ष, ते रूप वंक जे वक्रपणुं मायाकुटिल पणुं अर्थात् एवा अशुद्ध विकल्प जेमां नथी एवा तथा कर्म अंजन रहित जेनिर्मल गुण तेना धणी जे देवाधिदेव तेना ध्याननुं अवलंबन करवुं, तेथी प्रथ म तो तेनी साथें रति बनी आवे ॥ ४ ॥

ए ध्यानें सुख उपन्युं जेह, गुंगे गोल
गल्या परें तेह ॥ न कहाये मुख सुख बहु
थाय, निविड कर्मनां पाप पुलाय ॥५॥

अर्थः—एवा ध्यानना आलंबनथी जे सुख उपन्युं

ते कहेवुं उपन्युं? तो के जेम कोइक गुंगो पुरुष गोल ग ली जाय तेने मीठो पण लागे परंतु ते गुंगो छे माटे मुखें तेनी उपमा कही न शके,तेनी परें ते ध्यानालंबनथी कठिन कर्मनो नाश थवारूप बहु सुख थाय, निबिड जे आकरां कर्म रूप पाप ते पुलाय, नाश पामे, ते सुख, उपमा पूर्वक मुखथी कहि शकाय नही ॥ ५ ॥

तेवारें ते पुरुष केहवो थाय? ते कहे छेः—

चार शरणशुं लागो राग, जाणे एहथी
थयो वडभाग ॥ सुखदुःख आवे सम मन
लागो, वेदे नवि जिम रणमें नागो ॥६॥

अर्थः—अरिहंत, सिद्ध, साधु अने केवलि प्रणित धर्म,ए चारना शरण उपर राग लागो रहे, मनमां जाणे जे हुं एथी महोटो भाग्यवान् थयो! एम जाणतो ते सुख दुःख आवे थके तेने मनमां वेदे नही,तेनुं मन सम भावें लाग्युं रहे. जेम नागो एटले हाथी ते रणसंग्राममां रह्यो थको मनमां वैरी थकी पण कांइ भय न पामे, तेम आ पण सुख दुःखने न जाणे ॥ ६ ॥

असंख्य प्रदेशी निज जिउ द्रव्य, दर्शन ज्ञान चारित्र गुण भव्य ॥ पज्जव तेहना अनंतानंत, निज सरूप जाणे ते संत ॥ ७ ॥

अर्थः—पछी ते भव्यजीव, असंख्य प्रदेशी एवुं जे पोतानुं जीवद्रव्य छे ते दर्शन, ज्ञान अने चारित्ररूप भव्य एटले भला गुण युक्त छे, तेनेज विचारे. ते एकेका गुणना अनंतानंत पर्याय छे ते सर्व द्रव्य साथें अविनाशि भाव छे एवुं ते सत्पुरुष पोतानुं स्वरूप जाणे ॥ ७ ॥

एहथी अलगुं पुग्गल रूप, तेहथी न्यारो चेतन भूप ॥ एहनुं ज्ञान ते एहनुं ध्यान, दृढ प्रतीत चिंतन अनुमान ॥ ८ ॥

अर्थः—ए पूर्वोक्त चेतन लक्षण द्रव्यथी अलगुं ते अचेतनात्मक पुग्गलरूप जाणवुं. ते पुग्गलथी न्यारुं अरूपी जीवलक्षण युक्त जे चेतन ते राजा छे ए चेतननुं जे ज्ञान तेहीज ए आत्मानुं ध्यान जाणवुं. एवुं दृढ प्रतीतें चिंतन विचार अनुमानें करी प्रत्यक्ष गम्य करवुं. अने तेनेज प्रतीतें धारवुं ॥ ८ ॥

अरिहंतादिक शुद्धातमा, तेहनुं ध्यान
करो महातमा ॥ कर्म कलंक जिम दूरें
जाय, शुद्धातम ध्यानें सुख थाय ॥९॥

अर्थः—अरिहंतादिक नवपद ते शुद्धात्मा कहियें. माटें हे महात्मा पुरुषो ! तमें तेनुंज ध्यान करो, जेम स्वकृत कर्मरूप कलंकनो मल ते अलगो जतो रहे, अने अरिहंतादिक शुद्धात्मानें ध्यानें परम निर्बाध सुख थाय ॥९॥

मन वचन कायाना योग, शुभशुं जोडे
न ईहे भोग ॥ विकथा निद्रा ने आहार,
आसनना जय अनेक प्रकार ॥ १० ॥

अर्थः—मन, वचन अने कायाना योग व्यापार तेने शुभ स्थानकें जोडे, परोपकारें जोडे, पण पाप दुगंछादिकें न जोडे. भोग विषयादिकने न ईहे एटले न वांछे जोडे, तथा देशकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा, राजकथा, ए चार विकथा अने निद्रा, प्रमाद तथा अतिमात्रायें आहार गृध्रता त्यागीने वीरासन पद्मासनादिक जे अनेक प्रकारनां आसन तेनो जय करे. अर्थात् आसनना जयनो अभ्यास करी साधना करे ॥ १० ॥

एकांतें अति पावन गाम, रम्यदेश सुखा
सन नहिं घाम ॥ पटुइंद्रिय पण विषय वि
कार, नवि जावे मनमांहि लगार ॥ ११ ॥

अर्थः— वली एकांत द्रव्यथी विजनें प्रदेशस्थान तथा नावथी एकांत क्रोधादिकें रहित एवो अत्यंत पावन प्रदेश गाम ते द्रव्यथी शुचि स्थानक अने नावथी पावन संकल्परहित एवुं स्थानक तथा रम्य मनोहर प्रदेश ते द्रव्यथी सुखासन पद्मासनादिक तथा नावथी तो पर आशा रहितत्व तेज सुखासन जाणवुं, पण घाम एटले ताप ते द्रव्यथी उष्णप्रदेश अने नावथी द्वेष मत्सर ईर्ष्यादि रूप जाणवो, ते न होय एवे स्थानकें पांच इंद्रियनी पटुता सावधानता स्वस्व व्यापारें शुन जोडवे करीने रहे, पण इंद्रियार्थ विषय विकार जे कामनोगादिक तेने पोताना मनमां लगार मात्र पण नावे नही ॥ ११ ॥

गुरुविनयी ने श्रुत अनुयायी, गुणपक्षी ने
मन निरमायी ॥ उदासीन पणें नवना
व, सेवे पण नवि चित्त जमाव ॥ १२ ॥

अर्थः—वळी ते ध्याननो धरनार पुरुष कहेवो जो इयें? ते कहे छे. गुरुजननो विनयी होय नक्ति बहुमान प्रेमयुक्त होय, वळी श्रुत शास्त्रने अनुयायी क्रियानो करनारो होय, तथा धर्मप्रियतादिक गुणनो पक्षपाती होय, वळी तेनुं मन निर्मायी निष्कपटी होय. तथा नव एटले संसार तेना जे नाव तेने औदासीन्य नावें सेवे पण आसक्त पणे विषयादिक व्यापारनो चित्तमां जमाव करी न सेवे, अर्थात् व्यसनी न थाय ॥ १२ ॥

एहवा गुणनो सेवी जोय, ध्यान करणने
योग्य ते होय ॥ चलपरिणामी न धरे
ध्यान, शुद्धातमनुं शुं तस नाम ॥ १३ ॥

अर्थः—जे एहवा गुणनो सेवनार होय, ते पुरुष, ध्यान करवाने योग्य थाय. पण जे चलचित्त परिणामी होय ते ध्यानने धरी शके नही; तो एवा कहेला गुणथी विपरीत जे होय, तेने शुद्धातमनुं नाम पण शुं कहीयें? ॥ १३ ॥

थिर करि राखे जे उपयोग, करतो तत्त्व
तणो आनोग ॥ आतमसार ते चित्तमां
धरे, इणविध परमातम पद वरे ॥ १४ ॥

अर्थः— जे थिर परिणाम राखीने ज्ञानादिकनो उपयोग राखे, वळी तत्त्वादिकनो आभोग एटले विस्तार तेनो गवेषी होय, आत्मानो सार जे ॐकार रूप पंचपरमेष्टी तेने चित्तमां धरे, ए प्रकारें अभ्यास करनार प्राणी, परमात्मपदने वरे, एटले पामे ॥ १४ ॥

तेहनो शाश्वत अखय उद्योत, परम ब्रह्म परमातम ज्योत ॥ सहजानंद सदा सुख कंद, महासुख सागर गत सवि दंद ॥१५॥

अर्थः—ते परमात्मा केहवो होय? तोके जेनो द्रव्याथैं शाश्वतो अक्षय प्रदेशनी अपेक्षायें उद्योत छे माटे उत्कृष्ट ज्ञान ब्रह्मपरमात्मज्योति अरूपी सहजस्वरूप अतींद्रिय आनंदमय एवो सर्वदा सुखनो कंद छे. संसारनो दंद एटले क्लेश ते गत एटले गयो छे जेने एवो महोटा सुख समुद्र रूप जाणवो ॥ १५ ॥

प्रथम विचार करे एहवो, भव सुख दुःखदायी केहवो ॥ जे पुद्गलशुं परिणति करी, तेह थकी चारे गति फरी ॥ १६ ॥

अर्थः— हवे ध्यान साधक पुरुष प्रथम पोताना

चित्तमां एवो विचार करे, के नव जे संसार तेनां जे सुख छे, ते सर्व दुःखदायी छे अने ए आत्मायें जे पुद्गल साथें परिणति करी संगत करी ते थकी ते आत्मायें चारे गति फरी! ॥ १६ ॥

छाली वाटक नाटक गणुं, क्रोधादिक
दुःख केतां नणुं ॥ अनंतज्ञान जे केवल
रूप, परसंगें थयुं तेह विरूप ॥ १७ ॥

अर्थः— छाली जे बकरी तेने वाटक एटले वाडा मां घाली थकी ते, वाडानो जेम सर्व नूमि प्रदेश अव गाहे, तेम ए जीवें चौदराजलोक रूप वाटकमां नाटक करतां बकरीनी पेरें ते चौदराज लोक रूप स्थूल अव गाह्युं छे, तिहां क्रोधादिक काषायिक दुःख जे प्राप्त थयां. ते केटलांक हुं नणुं एटले कहुं! जे पोताना आत्मानुं केवलज्ञान अनंत रूप छतुं हतुं ते पण परपुद्गलना संग थी विरूप थयुं, एटले ज्ञान ते अज्ञानरूप थयुं ॥ १७॥

सकलऋद्धि सावरणें जाय, नाग बदाम
अनंत विकाय ॥ पुद्गल खल संगें दुःख
छान, मदिरा मोहथकी गत मान ॥ १८॥

अर्थः— सर्व ऋद्धि जेनी सावरणें करीने गत प्राय थइ तेवारें ते एक बदामने अनंतमे भागें वहेंचाणुं थकुं निगोदमध्यें खलरूपदुर्जन एवो जे पुद्गल ते ना संगथकी ए चैतन्य दुखनुं गाम थयुं, मोहरूप म दिराथकी गतमान एटले मानरहित गतलज्ज थयुं, जेमाटे जीव, सत्तायें तो सर्व सरखा छे पण एक ज्ञा नी एक अज्ञानी एवा भेदने पाम्या छे ॥ १८ ॥

द्रव्यप्राण करतें भव गयो, भावप्राण स
नमुख जब थयो ॥ जाण्यो सकल स्वभाव
विभाव, सत्य स्वरूप थयो समभाव ॥ १९ ॥

अर्थः— तेमाटे जीवें पंचेंद्रिय, त्रण बल, श्वासोश्वा स अने आयु, ए दश प्रकारनां द्रव्यप्राण करतां थकां भव जे संसार ते वह्यो, पण ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य रूप भावप्राण जे छे, तेने निरावरण करवाने जेवारें सन्मुख थयो, तेवारें आत्मज्ञानें करी स्वभाव, विभाव, समाधि, उपाधिरूप जे भाव ते सर्व जाण्यो. सत्यस्व रूपी थयो, असत्य भ्रम मट्यो, तेथी समभावें रह्यो. जेथी ज्ञानस्वभाव, आत्मा, अजडस्वभाव रूप अद्वेष गुण नीपन्यो ॥ १९ ॥

देखे निजपर केरां रूप, जिम नट नृत्य करंतो नूप ॥ आप आनंदमांहे ते ली न, शांतिसुधारसमांहि अदीन ॥ २०॥

अर्थः– तेवारें पोतानां अने परनां समान रूप जाण्यां. जेम राजानी आगल नटवो नवनवा रूपें नाटक करतो सामान्य प्रकारें सर्वने देखाडे, पण पोतें राजाना आनंदमां लीन थाय, तेम इहां पण मूल तो पोतें ते पोताना आत्मारूप जे राजा तेना आनंदमां लीन थाय, आत्मा शांतसुधारसमां अदीन पणे प्रवर्त्तें,तेवारें जेम जेम आत्मगुण प्रगटे,तेम तेम शांतसुधारसनी वृद्धि थाय. सिद्ध परमात्मा,सर्वजीवोने एवुं नव नाटक करतां देखे छे ॥ २० ॥

आपरूप प्रगटे जिण हेत,ते दाखे गुरु जन धरि हेत ॥ जिनशासनमांहे योग अनेक, नांख्या शास्त्रमांहे सुविवेक ॥२१॥

अर्थः–जे थकी आप एटले पोताना आत्मानुं रूप प्रगटे एवा श्रीजिनशासनमांहे अनेक योग जोडावीने ते व्यापार गुरु हित करीने देखाडे छे. जे प्रव

चन शास्त्रमांहे जला विवेकें करी कह्या छे ॥ २१ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ देशी बंगालानी ॥ काफी राग ॥
॥ राजा नहीं मिले ॥ ए देशी ॥

शिवसुख प्रापण मूल उपाय, ध्यान कह्युं छे जिनवर राय ॥ साहेब सेवीयें ॥ हांरे मनमोहन ॥ सा० ॥ ध्यानमांहे दो अशुन निदान, आर्त्त रौद्रनी कीजें हान ॥ सा० ॥ १ ॥

अर्थः—शिवसुख पामवां एटले जे मोक्षसुख पामवां तेनुं मूल एटले प्रथम उपाय तो श्रीजिनवरेंइें ध्यान कह्युं छे, जे एकाग्रचित्त करवुं तेने ध्यान कहियें. सर्व जीवना योगक्षेमंकर माटे साहेब कहेवाय, अने मनने मोहना करनार ते मन मोहन कहीयें तेने सेवीयें. हवे ते ध्यान सर्व मली चार कह्यां छे. तेमां पहेलां बे ध्यान तो अशुननां निदान एटले कारण छे, तेनां नाम कहे छे. एक आर्त्तध्यान ते इंद्रिय विषयनुं चिंतवन रूप जाणवुं, अने बीजुं रौद्रध्यान ते षट काय जीवोना वध चिंतववा रूप जाणवुं. ए बें ध्यानना वली जाषाना चिंतनना नेद पापालंबन लक्षणादि विचार बहु छे ते शास्त्रांतरथी जाणवा.

ए बे मार्ग ध्यान छे, तेनी हानि करीयें ॥ १ ॥
धर्मशुक्ल दोय ध्यान प्रधान, उत्तरोत्तर गुणध
र अनिदान ॥ सा० ॥ धर्मध्यानथी आर्त्त रौद्र
जाय, निर्विकल्प गुण तेहथी सधाय ॥सा०॥२॥

अर्थः—हवे धर्म ध्यान ते सरागचारित्रीयाने सकाम निर्ज्जरानुं हेतु जाणवुं, अने शुक्लध्यान ते आत्माने निरावरण थावानुं हेतु जाणवुं. ए रीतें ए पाछलां बे ध्यान ते उत्तरोत्तर प्रधान गुणनां निदान एटले कारण छे. पण संसारनां कारण नथी. ए बे मांहेलुं प्रथम धर्मध्यान आव्याथी आर्त्त अने रौद्र ए बे मार्ग ध्यान जतां रहे. तेथी निर्विकल्प गुण सधाय, बोध बीज सुलन्न थाय, माग संकल्प न उपजे, नरकगति तथा तिर्यंच गति ए ध्यानथी टली जाय ॥२॥

शुद्धद्रव्य गुणपज्जव जेह, शुक्लध्यान छे
तेहनुं गेह ॥ सा० ॥ धर्म्मध्यान छे तेहनुं
हेतु, शुक्लध्यान मोह जीपन केतु ॥सा०॥३॥

अर्थः—अने शुद्धद्रव्य गुण पर्यायात्मक नित्यानित्यात्मक जे वस्तुस्वन्नाव चिंतन तेनुं घर तो शुक्लध्या

न छे ए ध्यान श्रुतधर, पूर्वधर अने श्रेणिगत साधु ने होय, अने धर्मध्यान जे छे ते पण शुक्ल ध्याननुं हेतु छे,अने शुक्लध्यान ते मोह जीपवाने केतु नामा ग्रह समान छे एना ध्यायवानां, आलंबन, पाया, उपाय ते अनेक छे. ते आवश्यक निर्युक्ति प्रमुख ग्रंथोथी जाणवा ॥ ३ ॥

शुद्धक्रिया जे अनुभव सार, धर्मध्यान छे
तास आधार ॥ सा० ॥ आत्मवीर्य जे अनु
भवधार,शुक्ल ते कर्मछेदनने कुठार ॥सा०॥४॥

अर्थः– अनुभवज्ञाने करी त्रिकरणयोगें जे शुद्ध क्रिया करवी ते सार प्रधान छे (तास के०) ते क्रियानो धर्मध्यान जे छे ते आधार छे. कारण के, ज्ञान, दर्शनें करी शून्य धर्मध्यान न होय. तथा जे अनुभव ज्ञान क्रियायुक्त आत्मानुं वीर्य जोडवुं ते कर्म छेदवाने अर्थें तीक्ष्णधारावाला कूवाडा समान शुक्ल ध्यान छे. वली आत्माने उज्ज्वल करे, तेने शुक्ल कहियें, अथवा मोहादिक कर्मने शुक्ल दान शुद्ध करीने न्यायगत थाय, ते शुक्लध्यान कहियें ॥ ४ ॥

मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ, धर्मध्यानें होय ए चउ स्वस्थ ॥ सा०॥ अरिहंतादिक शरणां चार, काल अनादिना जास प्रचार॥सा०॥५॥

अर्थः—जे परने हित चिंतववुं ते मैत्रीजावना कहीयें, तथा गुणी प्रमुखने देखी हर्ष पामे ते प्रमोद जावना कहीयें, तथा ड्रव्य जावे करी डुःखीजननी उपर दया करे, ते कारुण्यजावना कहीयें, तथा जे क्रूरकर्मा, पोतानी प्रशंसा करनारो, गुणीजननो द्वेषी होय तेनी उपेक्षा करे ते माध्यस्थजावना जाणवी ए चारे जावना स्वस्थ पणे प्रशस्त गुणरूप धर्म ध्यानमां होय, घातिकर्म रहित ते अरिहंत, आठकर्म रहित ते सिद्ध, पंचाश्रवें रहित ते साधु, अढार पापस्थानक रहित ते धर्म, ए चारना शरणनुं करवा पणुं धर्मध्यानमां होय. ए अनादिकालपणे जेनो प्रचार छे, एटले जिहां संसार अनादि तिहां ए पण अनादि छे॥ ५॥

इंड्रियसुख अजिलाषी तेह, धर्मध्यान
तस नावे देह ॥सा०॥ शुक्लध्याननुं आवे
रूप, ते मूंदे संसारनो कूप ॥ सा०॥ ६॥

अर्थः— तेमाटें जे प्राणी इंद्रियसुखनो अभिलाषी भवाभिनंदिपणें इच्छक होय, तेना देहने विषे धर्म ध्यान आवे नही. तथा जेने शुक्लध्याननुं स्वरूप आवे,ते प्राणी संसाररूप कूपने मूंदे,एटले ढांके ॥ ६॥

भवाभिनंदीने ए नवि होय,पुद्गलानंदीने
भजना जोय ॥सा०॥ आतम आनंदी जे
होय,शुक्ल शुक्ल गुण प्रगटे सोय ॥सा०॥७॥

अर्थः—भवाभिनंदी जीवने ए ध्यान न उपजे, अने पुद्गलानंदी प्राणीने तो वली आपातमात्रें होय, तो तेनी ना न कहेवाय,पण प्रश्नचंद्रादिकनी पेरें घणी वार टके नही, माटें एने भजना जाणवी. तथा जे आत्मानंदी शम संयम सुखमां मग्न होय, तेने दमदंतादिक मुनिनी पेरें तेहीज शुक्ल (शुक्ल के०) शुद्ध एवो गुण प्रगट थाय. शुक्ल ध्याननुं एटलुं विशेष छे के, जे जे थाय, ते ते तेने गुणरूप थाय ॥ ७ ॥

चित्त विक्षिप्त ने यातायात,तेहने ध्यानें न रहे
थिर थात ॥सा०॥ सुश्लिष्ट चित्त अने सुली
न, तिहां ए डविध होइ लयलीन ॥सा०॥८॥

अर्थः—वली चार प्रकारनां चित्त कह्यां छे; तेमां प्रथम विक्षिप्तचित्त जे अभ्यंतर चल दुष्टभाव होय ते जाणवुं. बीजुं यातायात ते बकमीनध्याननी पेरें कांइक थिरभाव माटें सानंद दुष्टभावनी अथिरता एवा लीनपणे ए ध्यान भावे, ते ध्यानें थिरथकुं रहे. त्रीजुं सुश्लिष्ट चित्त ते थिरताभावें आनंद युक्त. चोथुं सुलीन चित्त ते परम लीनता जाणवी. तिहां सुश्लिष्ट अने सुलीन, ए बे ध्यानमां धर्मध्यान अने शुक्लध्यान, ए बे ध्यान आवे, अनें निश्चल परमानंदमयपणुं थाय ॥८॥

शुद्धातम रत्नाकरवेलि, प्रगटे तिहां भवि
कीजें केलि ॥ सा०॥ विषयकषाय जे भवत
रुमूल, ध्यानकुठारें करो उन्मूल ॥ सा० ॥ए॥

अर्थः—शुद्धात्मरूप जे रत्नाकर तेनी वेलि जे लहेर ते जिहां प्रगटें, तिहां अहो भविकजनो ! केलि जे क्रीडारसरंग तेनें करो. विषयकषायमय (भव के०) संसार ते रूप जे वृक्ष छे, तेनां आर्त्तरौद्रादिक जे मूल छे तेने शुक्लध्यान रूप कुहाडायें करीने हे भव्य ! तमें उन्मूली नाखो ॥ ए ॥

ज्ञववनमां ज्ञूलो करे दोर, पण नवि पामे किहा ए ठोर ॥ सा०॥ जब ए ध्यान अवलंबन थाय, तव ज्ञव ज्ञव डुख सघलां जाय ॥ सा० ॥१०॥

अर्थः— संसाररूप अतिगहन वनमां ज्ञूल्यो थको बहिरात्मा (दोर के०) दोडादोड करे ठे. पण क्यांय ठोर एटले ठेकाणुं पामतो नथी; ज्रमणज करतो रहे ठे. तो हवे जेवारें आत्मा ए ध्याननुं अवलंबन करें, तेवारें बहिरात्मा टली अंतरात्मा थाय. तेथी ज्ञवज्ञव कर्मजनित सघलां डुःख जाय ॥ १० ॥

तरणिकिरणथी जाय अंधार, गरुडमंत्र जिमविषप्रतिकार ॥सा०॥जिम रोहणगिरि रत्ननि खाण, तिम ज्ञानादिकगुण मणिध्यान ॥सा०॥११॥

अर्थः—जेम (तरणि के०) सूर्य तेना किरणनो प्रसार थवाथी अंधकार जाय ठे, जेम गरुड अने गारुड जांगुलिकना मंत्रथी स्थावर अने जंगम सर्व प्रकारना विषनो प्रतिकार एटले नाश थाय ठे, जेम रोहणाचल पर्वतथी सर्वजातिना रत्नोनी खाणो प्राप्त थाय ठे, अथवा जेम सुवर्णगिरिथी सर्वधातु रसायन सुवर्णादि

कनी प्राप्ति थाय छे, अने दारिद्र्य रहेतुं नथी, तेम ए ध्यानथी ज्ञानादिक गुणरत्नयुक्त कल्याणसिद्धि मोक्षसिद्धि प्राप्त थाय छे ॥ ११ ॥ इति ॥

हवे पूर्वें कहेला चार ध्यानमांहेलां धर्मध्यान अने शुक्लध्यान,ए बे ध्यान ध्याववा योग्य छे, तेनुं स्वरूप कहेवाने आ त्रीजी ढाल कहे छे.

॥ ढाल त्रीजी ॥

॥ त्रिभुवन तारण तीरथ० ॥ ए देशी ॥

धर्मध्याननी व्यक्ति, हवे इम दाखीयें रे के ॥ह०॥ शास्त्रतणे अनुसार,नाममात्र भाखी यें रे के ॥ना०॥ योग अष्टांग समाधि,सकल दर्शन कहे रे के ॥स०॥ पण ते भव्यस्वभा व, पुरुष विणु नवि लहे रे के ॥ पु० ॥ १ ॥

अर्थः– हवे धर्मध्याननी व्यक्ति एटले प्रगटता ए वीरीतें दाखीयें एटले कहीयें छैयें. तेना विचारनां शास्त्रो योगदीप, ध्यानदीप प्रमुख बहु छे, पण योग शास्त्रादिकने अनुसारें नाममात्र कहियें छैयें. अष्टांग योगनी समाधि सर्वदर्शनी कहे छे; परंतु तेना रूडा

विचार नव्यस्वनावी योगी पुरुष विना बीजाथी कही शकाय नही ॥ १ ॥

हवे अष्टांगयोगनां नाम कहे ठे.

यम नियम प्रणिधान, करण प्राणायाममां
रे के ॥ क०॥ प्रत्याहार ने धारणा, ध्यान म
नोदमां रे के ॥ ध्या०॥ एकनाव सुसमाधि,
ए अड योग ठे रे के ॥ए० ॥ एहथी डुष्टवि
कल्प, नहि वली नव गठे रे के ॥ न०॥२॥

अर्थः– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, मैथुनत्याग, परिग्रह परिमाण, ए पांच प्रकारनो प्रथम यमनामा योग जाणवो. नियम, शौच, संतोष, सझाय, तप प्रमुख, ए बीजो नियमनामा योग जाणवो. तथा शुन्न प्रवृत्तियें देवादिकना आराधन माटे तथा ध्यान करवा माटें प्रणिधान करण एटले इंड्रियनिरोधने हेतें आसनादिकरण, ते त्रीजो प्रणिधान करण योग. तथा शरीर लघुकरण हेतें श्वासोछ्वासादिकनुं रुंधन ते चोथो प्राणायामयोग, तथा इंड्रियना वर्गने विषयार्थथकी निवर्त्तावबुं ते पांचमो प्रत्याहारयोग जाणवो. तथा कोइएक प्रशस्त शुन्नध्येयने विषे चित्त

नुं स्थापन करवुं, ते छठो धारणायोग जाणवो. तथा ध्यान ते जे ध्येय कह्युं छे तेनुंज बहु दूर विषय ए च पलता टाली एकांशें जोडवुं, ते सातमो ध्यानयोग जाणवो. अने धारण तथा ध्यान ए बेहुनी स्थापना ते एकत्वजावें करी तन्मय जावें थावुं, ते समाधि कहीयें. तेहीज अर्थमात्र आजासमात्र थाय ते आठमो समाधियोग, कहेवाय. ए अष्टांग योग सकलदर्शनसंमत छे. एमां डुष्टविकल्प न उपजे, तेवारें जव जे संसार ते रूप जे डुष्टपणुं छे ते गछे एटले जाय छे ॥२॥

रेचक पूरक कुंजक, प्रत्याहारथी रे के ॥
प्र० ॥ जाल नासा तन द्वारें, वायु प्रचार
थी रे के ॥वा०॥ यतनायें करे रोध ते, शां
ति कहीजीयें रे के ॥शां०॥ उत्तर अध ते
वायु, व्याधि घात कीजियें रे के ॥व्या०॥३॥

अर्थः—कोइएक प्राणी ध्यानसिद्धिने अर्थें प्रथम प्राणायाम करे, ते प्राणायाम पवन निर्जयविना करी न शकीयें. जिहां मन होय, तिहां पवन होय अने जिहां पवन होय तिहां मन होय. ते बेहुने तुल्यक्रिया करवाने अर्थें कीरनीरना न्यायनी पेरें मलवाने काजें रेचक पूर

क कुंभक करे, तेमां नासा, ब्रह्मरंध्र ने मुखथकी जे वायु, तेनो बहिःप्रचार करे, ते प्रथम रेचक, हवे अपानद्वारथी अंतर्गतें पूरक करे, ते बीजो पूरक. तथा नाभिपद्मनें विषे पवन स्थिर करे, ते त्रीजो कुंभक, अने पवनने स्थानक थकी स्थानांतरें करे, ते चोथो प्रत्याहार तथा भाल, नासा, मुखद्वारें करी पवननो रोध करवो, ते पांचमो शांतनामा भेद जाणवो. एटळे पवन साधना थिरता करीने जेवारें पाछो मूके, ते वारें यतनायें सावधानपणे स्वस्थें स्वस्थें मूके, ए पांचप्रकारें सर्व प्राणायाम विधि जाणवो. तथा उत्तर एटळे उपरनोवायु अने अध ते नीचेनो वायु तेनो रोध करवाथी व्याधि जे रोगादिक तेनो विघात थाय. एटळे ए उत्तर पवन अने अधःपवननी साधना नीरोगनी हेतु छे ॥ ३ ॥

उव्यें जाय त्रिदोष, वात पित्त कफ मुखा रे के ॥ वा० ॥ भावथकी निर्दोष, होय तस नाहिं रुषा रे के ॥ हो० ॥ विषयकषाय आशंस, त्रिदोष गयाथकी रे के ॥ त्रि० ॥ दोष शांति तनु कांति, वधे बळ बहुथकी रे के ॥ व० ॥ ४ ॥

अर्थः— तथा द्रव्यथकी पण पवन साधन करवें करी वात,पित्त, कफ प्रमुख त्रिदोष रोगो जाय. नाव थकी पवन साधनाथी पण विषय कषाय,मिथ्यात्वनी मंदता थाय. तथा नहिं रुषा एटले नासायें पणनिर्दो षता थाय तेने रोध न थाय. विषय,कषाय,आशंस ए अंतरंग त्रिदोष गयाथकी सर्वे दोषोनी शांति थाय. प ळी अत्यंत कांति वधे, तथा पुण्यप्रकृतिनी पुष्टि थाय. दृढतादि धैर्य बहु वधे. तथा वळी त्रिदोष नाश पामे थके घणा गुणो वृद्धि पामे ॥ ४ ॥

औदासीन्य मृगांक, पुडीनी सेवना रे के ॥
पु० ॥ करता पावन थाय, नहिं कलुषित
मना रे के ॥ न०॥ थाये तिहां वळी बीज, हृ
दय कमलें सदा रे के ॥हृ०॥ स्थानवर्ण क्रि
या अर्थ, आलंबन ते मुदा रे के ॥आ०॥५॥

अर्थः— वळी ते पूर्वोक्त रीतें त्रिदोष गयेथके उदा सीनता रूप मृगांक पुडीनी सेवना करे. अर्थात् अ प्रमाद युक्त, अने नवीन कथारहित विजन ते एकांत स्थान तेने सेवे. वळी धर्मामृतरूप पथ्य सेवरावे,पछी औदासीन्य मृगांक पुडीनुं सेवन करतां कलुषित मन

टले,धर्मरुचि वधे,बाह्य ते मलरोगादिक अने अंतरंग ते अशुभ ध्यानादिक ते पण टले, अने ते टले तेथी पावन थाय.एटले जेम आगामी वरसमां सुभिक्ष थवानुं होय, तेवारें वरसना थंभ जेम सारा थाय, तथा सूर्य उगतां पहेलां जेम अरुणोदय वगेरेथी सूर्योदयनी कल्पना थाय तेम बाह्य मलरोगादिक तथा अंतरंग अशुभ ध्यानादिकना नाश थवाथी शुभकार्य थवानुं छे,एम सूचना थाय छे. वली एवा शुभाशय रूप धरतामां हृदय कमलने विषे सदा एटले निरंतर बीज थापे. ते बीज कयां थापे? तोके स्थान,वर्ण,क्रिया, अर्थ अने आलंबन,तेमां स्थान ते मुद्राप्रस्थान न्यासादि, वर्ण ते प्रयत्न उदात्तादिक, क्रिया ते शून्योपयोग स्वमतिकल्पित नहि ते, अर्थ ते यमनियमानुयायी गुरुप्रदत्त, आलंबन ते प्रतिमा स्थापनादिक,क्रियानां बीज, आनंदथी हृदयकमलमां थापे ॥ ५ ॥

वली बीजी क्रियाना प्राणायामनो विचार लेशमात्र कहियें छैयें.

प्राणापान समान, उदान अव्यान छे रे के ॥उण॥ अंगें पंच समीर,ते बीज स

मान छे रे के ॥बी०॥ यँ यँ वँ रोँ लोँ, अनाहत बृंहना रे के ॥ अ० ॥ ज्न्य प वननां पंच, ए बीज छे धर्मनां रे के ॥ ए०॥६॥

अर्थः—प्राण,अपान,समान,उदान,अव्यान,ए पांच वायु अंगमध्यें छे; हवे प्राणवायु ते श्वेतवर्णें नासाग्र थी प्रारंजीने हृदय,नाजि,पद,अंगुष्ठांत गोचर होय. अ पानवायु ते श्यामवर्णे, पृष्ठिथी आरंजी यावत् पानी प र्यंत होय. समानवायु ते नीलवर्णे, संधि, हृदय,शिरां तर्गत होय. उदान वायु ते कंठ, तालु, ज्रुवादि मध्य वर्त्ती पीतवर्णें होय,अव्यान वायु ते सर्व त्वचा व्यापी होय, अने रक्तवर्णें होय. तेमां प्राण अने अपान ए बेहुनी गमागमें धारणा करवी, उदानवायु तेवश्य करवो, समानने इंडियजयार्थें स्थापवो,इत्यादिक सर्व विचार योगशास्त्र, योगप्रदीप, योगपातंजलि प्रमुख ग्रंथथी जाणवो. प्रकृतिसंकोच, विकार, निर्विकार, साधननां कारण पवन छे. तेमाटें ते पवन साधवाने यँ यँ वँ रोँ लोँ ए पांच वर्णबीज छे,तेमां प्राण अने अपाननां यँ यँ ए बे बीज छे. वँ ए समाननुं बीज छे, अने रोँ ए उदाननुं बीज छे,लोँ ए अव्याननुं बीज

जाणवुं. ए पांचना वर्ण छे; हवे ए पांचे वायु उग वे, त्यारें ते पवन, अनाहत नाद दशमे द्वारें पहोंचावे, तेवारें लीन थाय. त्यारें अजाण मनुष्य कहे जे शून्य थइ गयो, ने वली भेदज्ञानी कहे जे तन्मय भाव थयो. तथा पवनाभ्यासी कहे जे अनाहत नाद पाम्यो. इत्यादिक भाव सहु कहे. वली द्रव्यपवनना अभ्यासीने पण तेथी आहार, निद्रा, विकथा, आस नद्दढताना धर्म होय ॥ ६ ॥

दीपन होय जठराग्नि, तनु लाघव पणुं रे
के ॥ त० ॥ रोगादिकनो नाश, अल्प मल
धारणुं रे के ॥ अ० ॥ गमनागमनें श्रांत,
न होय दृढ आसनं रे के ॥ न० ॥ पवन
तणो जय होय, कृपारसवासनं रे ॥ कृ० ॥ ७ ॥

अर्थः—वली पूर्वोक्त रीतें पवन साधना करवाथी जठराग्नि प्रदीप्त थाय, कामवीर्यनुं च्यवन थाय नहिं. शरीरनुं लघुपणुं थाय, हलकुं थाय. बाह्यरोगादिकनो नाश थाय, अल्पमलधारणुं एटले उच्चारादिक थोडां होय, ते वातादिकनुं निर्गमन सुगंधमय थाय. तथा गमनागमन करवाथी थाक न होय. श्वासोच्छ्वासादिकथी

श्रम न होय तथा आसननानी दृढता थाय. वाक्यनी चपलता तथा शरीरनी चंचलता होय. तथा उत्सुक दिदोषनी शांति होय. अने वली पवननो जय होय, तारें कृपा जे करुणा तेना रसनी वासना थाय, तथा निर्दयपणुं टले ॥ ७ ॥

लिंग नाभि ने तुंद, हृदय कंठ तालुयें रे
के ॥हृ०॥ रसना नासा नेत्र, भ्रूभाल शिर
मालीयें रे के ॥ भ० ॥ इणठामें निज ते
ज, धरे वायु चारशुं रे के॥ध०॥स्थानांतर
करि एम, साधे दशम द्वारशुं रे के ॥सा०॥८॥

अर्थः—लिंगचक्र, नाभिचक्र, उदरचक्र अने हृदय चक्र, कंठ, तालवुं, रसना, नासा, नेत्र, भ्रू, भाल, अने शिर, ए बार ठेकाणां तेजने रहेवानां छे. तथा स्व ध्वनि, उत्पादक स्थानक ए शरीर पुंत्तलकादिकें ज णाय. तथा पवनस्थापनानां स्थानक पण छे. वायु साधवानां स्थानांतर पण करे. इहां पन्नर अवस्था छे, ते प्रभातें जे स्वरसाधनामां जे अवस्थामां नाडी प्रचार होय, ते दिने ते अवस्था प्रायः मुख्यतामां

होय. ते वली पूर्ण साधक होय. दशमा द्वारथी फेर वी चक्र साधे ॥ ८ ॥

इम करे पवनाभ्यास, क्षुधा तृषा जीतवा रे के ॥ क्षु० ॥ वर्णरूप रसगंध, शब्द गुण साधवा रे के ॥ श०॥ इंद्रिय विषयविकार, तणे वश नवि होय रे के ॥त०॥ एम करतां ब्रह्मरंध्र, लहीसिद्धिने जोय रे के ॥ल०॥९॥

अर्थः—एणी पेरें पवनाभ्यास करतो क्षुधा अने तृषाने जीते. पूरणाप्रमाण नामा साधनाने पामे. बे परवा रहेवुं,ते पूरणाप्रमाण साधना जाणवी. तेहनो विचार निगमचिंतामणि ग्रंथथी जाणवो. हवे ते पूरणाप्रमाणसाधनाथी वर्ण, रस,गंध, शब्द, गुण, सर्वे सधाय छे,अने जे अशुभ ते शुभ थाय. वली तेवी पूर्वोक्त साधना करनारो प्राणी, इंद्रिय विषय विकारने वश थाय नहिं. तेने ध्यानमां स्थिरता रहे. पछी एम करतां ब्रह्मरंध्रज्ञान मार्ग पामीने सिद्धिने जोवे. अर्थात् ते प्राणीने रूपातीत ध्याननी योग्यता होय. एटले योगनलिका बांधीने शुद्धात्म शेरी निहाले ॥ ९ ॥

द्वादशविद्यास्थान,नजे तिहां अनुक्रमें रे के ॥न० ॥ पृथिव्यादिक पंचनूत, तणां तत्त्व अ निगमे रे के ॥त०॥ मंमल चक्र ने आर,आ वर्त्त प्रमुख बहु रे के ॥ आ० ॥ तेहना जे वि स्तार,लहो ग्रंथथी सहु रे के ॥ल० ॥ १० ॥

अर्थः—ते अनुक्रमें द्वादश विद्यास्थानने नजे. जे नणी चार मोहनी चार स्तंननी चार उच्चाटनी,ए बार, ते सात्विक, राजस अने तामसें जोडतां थाय.अथवा अष्टांग योग अधिति, बोध, आचरण अने प्रचारणें करी थाय. तथा वली पृथिव्यादिक पांच तत्त्वना अ निगम जाणवा रूपें करी पण प्रापक थाय, पवना न्यासी विना पण अनाहतनाद पामे. मंमल, चक्र, आरा, आवर्त्त इत्यादिक मंमलमंत्र, अवतारचक्र, हृ दयकमलादिकें आरासाधनादिकें. आवर्त्त ते न्यास स्थापनादिकें अवगुणनुं उसरण, नूमिप्रमार्जन प्रमु ख बहु विधान कह्यां छे,ते जाणवां. तेहनो जे विस्तार प्रपंच ते बुधजनोयें सहुयें ग्रंथथकी लह्या छे ॥१०॥

द्रव्ययोगी जे होय,लहे ते अभ्यासथी रे के ॥ ल०॥ तेहमां अचरिज कोय, न धर्म सुवासथी रे के ॥ न० ॥ इणिपरें साधे समीर, ते वात त्रिकालनी रे के ॥ ते० ॥ स्वरसाधनथी तेह,लहे जलवालथी रे के ॥ल० ॥११॥

अर्थः– वली जे द्रव्ययोगी एटले द्रव्यथी साधनादिकनो अभ्यासी होय,गुरूपासना शील होय,ते पण ए सर्व प्रकार जाणे,ते वातमां कांइ अचरिज नथी. धर्मनी सुवासनाथी अने गुरुनी प्रसन्नताथी शुं न थाय? इणी परें समीर एटले पवन साधना करतो थको अतीत,अनागत अने वर्त्तमान, ए त्रण कालनी वातनें पण जाणे. इंगित आकारादिक अथवा स्वरसाधना पण जाणे तथा जलवाल ते श्वास नाडी प्रचारथी पण जाणे, तेहनें सदा शुभ होय ॥ ११ ॥

मंडल चार विचार, समीरतणां कह्यां रे के ॥ स० ॥ भौम वारुण वायव्य, आग्नेयपणें कह्यां रे के॥ आ० ॥ अभ्यासें संवेद्य, समी

रनी थापना रे के ॥ स० ॥ नासिकारंध्रें हो
य, पूरण समापना रे के ॥ पू० ॥ १२ ॥

अर्थः– समीर जे पवन तेनें साधवानां चार मंम्ल स्थिरस्थान कह्यां छे,तेनां नाम कहे छे. एक नौम मंम्ल ते पृथिवी,बीजुं वारुण मंम्ल ते आप, त्रीजुं वायव्य ते वायुमंम्ल, चोथुं आग्नेय मंम्ल, तेनां तत्त्व, वर्ण, गंध, रसादिक स्वरसाधन सर्व नाडिकाथी जाणवां. हवे ते नाडिकाना बे नेद छे. एक अवेद्यस मीर सधाय तेना अन्यासथी बीजो संवेद्यसमीर ते व्यक्त समीरथी जेहनुं स्थानक आकाश तत्त्व ते सर्व त्र व्यापक छे,पण नासिकाना रंध्रथकी समीरनी पूर्ण समापना जणाय, ते स्वरोदय कहियें ॥ १२ ॥

मंदें मंदें वायु, वहे जे तत्त्वनो रे के ॥
व०॥ ते ऊपर जे कार्य,विचार ममत्वनो
रे के॥वि०॥ वायु कवोष्ण ने शीत,कृष्ण
ने बाहिरें रे ॥ कृ०॥ तिर्यगध उर्ध्वमान,
बाल रवि सम सही रे के ॥ बा० ॥१३ ॥

अर्थः–मंदमंद पणे जे वायु प्रचार ते वायु तत्त्व कही

यें. तिहां आकाशतत्त्व ते ऊर्ध्ववायु तत्त्व, तिर्यक् प्रचारी होय. अप्तत्त्व ते अधोगामी, पृथिवीतत्त्व ते समगामी; अग्नितत्त्व ते समोर्ध्वगामी इत्यादि विचार जाणवो. ते उपर वळी कार्य ते जेनो मृदु, खर, सुभग, दुर्भग, स्थिर, अस्थिर, शीघ्र, मंद प्रमुख विचारनो जेहवो ममत्व भाव होय तेहवुं अंगीकार करवुं. वायु फरस पण कोइनो उष्ण, कोइनो कवोष्ण, शीत इत्यादि होय. ए सर्व नाडीथी बाहिर फरता वायुनो होय. तिर्यग् एटले कोइनो तीर्छो, कोइनो अध ते नीचो, कोइनो ऊर्ध्वगामी संचार होय. तथा कोइ तत्त्वनो वर्ण बालरवि एटले बाल सूर्यसमान, कोइनो धूम्रसमान, कोइनो पीत, कोइनो नील, कोइनो श्याम अने कोइनो सपेत होय॥ १३ ॥

वामा दक्षिण नासा, रवि शशि गृहधरा रे के
॥ र० ॥ तिहां दिन पक्ष ने वार, शुभाशुभ
नी त्वरा रे के ॥ शु० ॥ इत्यादिक बहुभेद,
कह्या योगग्रंथमां रे के ॥क०॥ ते सवि होये
द्रव्य, तणा पलिमंथमां रे के ॥ त० ॥१४॥

अर्थः—नासिका पण बे छे, एक वामा, बीजी द क्षिणा. तिहां वामानुं घर शशी छे, अने दक्षिणानुं घर रवि छे. तेमां वली शुक्ल कृष्ण पक्षना नेदें तथा दिवस अने रात्रिना नेदें तथा सौम्यक्रूर एवा वारने नेदें छे. तेमां वली दक्षिणानासिकाने क्रूरवार जोइयें अने वामा नासकाने सौम्यवार जोइयें. ते नाडीयोथी शु नाशुन कार्य जोवां. अथवा वली वहेती बेइ नासि कानी त्वरा पण जोवी. क्षत्रियादिक वर्ण पण जोवा. कह्युं छे के ॥ गमने प्रवेशकाले, दीक्षावाणिज्यनृपति सेवायाम् ॥ क्षौरकर्मचिकित्सेषु, वामा नाडी शुना क थिता ॥१॥ यात्रायुद्धे विवाहे च, विद्यायां राजदर्शने ॥ कामोद्दीपनचौर्ये च, दक्षिणा हि शुना स्मृता ॥ २ ॥ इत्यादिक घणा नेदोना विचार, योगग्रंथ, योगशास्त्र, विवेकविलास, स्वरोदय, स्वरदीपक वगेरे ग्रंथोथी जा णवा. ए सघला इव्ययोगी अन्यासथी साधे. ते सा धवाने घणा पलिमंथ एटले उपक्रम करे छे ॥ १४ ॥

हवे नावें अध्यातम, पवननें साधियें रे के ॥ प० ॥ गंनीरादिक अड गुण, तेहमां वाधि यें रे के ॥ ते० ॥ कृष्ण शुक्ल दोइ पक्ष, विरति

अविरति बिहुं रे के ॥ वि० ॥ नासिका आ
स्तिकनाव,समीर धरे बहु रे के ॥स०॥१५॥

अर्थः—हवे नावथी अध्यात्म साधवाना उपाय कहे डे. गंनीरादिक आठ गुण जे प्राणीने होय, ते नावपवन साधनामां वाधे, ते कहे डे. एक कृष्णपक्षी बीजो शुक्लपक्षी, तेमां जेहने एक पुजल परावर्त्त संसार होय, ते शुक्लपक्षी जाणवो, अने तेहथी अधिक संसार जेनें होय, ते कृष्णपक्षी जाणवो अने अनव्य जीवतो अलेखें. अविरति विरतिप्राणी ते बेहु नाडिकानी धुरा जाणवी. तेमां एक चंडनी अने एक सूर्यनी. आस्तिक नाव जे नासिका तेमां पांच समीर ते पंचाचार प्रचार जाणवो ॥ १५ ॥

चंडसूरजनां रश्मि ते,देश सर्वसंयता रे
के ॥दे०॥ क्रोधादिक चउ मंमल,नी ति
हां चक्रता रे के॥नी०॥पंच इंडिय जे पटु
ता,तत्व विचारियें रे के॥त०॥विषय तणा
संचार,विकार निवारियें रे के॥वि०॥१६॥

अर्थः—जे चंडसूर्यनां रश्मिमंमल, ते देशविरतिना

अने सर्व विरतिना मूलगुण उत्तरगुणादिकना संयमप णाना दोर ते क्रोधादिकना अनंतानुबंधिया अप्रत्याख्यानीया प्रत्याख्यानीया संज्वलनादिकनां चारचार चक्रमंमल जाणवां. तिहां पांच इंद्रियनी पटुता, ते पांच तत्त्वविचारणा ते प्रशस्तपणे इंद्रियार्थ करण शक्ति संचार अशुन्नविषयार्थना विकार ते सर्वनी विचारणा एटले अशुन्नविषयार्थना सर्व विकारनी विचारणा, तेज तत्त्वना प्रचार जाणवा ॥ १६ ॥

परमातमनुं चिंतन, अध्यातम तिहां रे
के॥अ०॥ अशुन्नतणो संकल्प, तेणे करि
नहिं तिहां रे के ॥ते०॥ शुन्नसंकल्पें सक
ल, मंमल चक्र फेरवे रे के॥मं०॥जेह अवि
द्यावायु, प्रचार न योगवे रे के ॥प्र०॥ १७॥

अर्थः–तिहां परमात्मानुं स्वरूप चिंतन ते अध्यातम जाणवुं. ते अध्यातमें करी अशुन्न संकल्पादिकना संकल्प अने आश्रवनो रोध थाय. तिहां शुन्नसंकल्पें करी सकलमंमलचक्रने फेरवे, अने अविद्यारूप अशुन्नवायुनो जे प्रचार, तेने जोगवे नहिं ॥ १७ ॥

इंद्रिय मल्ल आलवाल, जंबाल न जोगवे रे के ॥ जं० ॥ आतमराज मराल, ते अशुचि न संजवे रे के ॥ अ०॥ परथी जय नवि पामे, आतमने बलें रे के ॥ आ०॥ दुर्ध्याना दिक प्रेत ते, तेहने नवि बले रे के॥ते०॥१८॥

अर्थः—तेवारें यद्यपि विशुद्धात्मा नथी थयो, तो पण इंद्रियना मलरूप जे आलवाल एटले जलनी नीक तेनो जंबाल जे कचरो, तेने जोगवे नहिं. शिवकुमारादिकोनी पेरें आत्मराजरूप हंसने अशुचिरूप पंकनो जोग संजवे नहिं. अने पर जे मोहादिक वैरी तेथी ते जय पामे नहिं. अगंजेयपणाथी वरते. अर्थात् पोताने बलें करी वरते. परंतु कोइनुं सहाय वांछे नहिं, अने ते पुरुषने आर्त्तरौद्रादिक दुर्ध्यानरूप जे प्रेतडां ते पण छली शके नहिं. कोइना दंजप्रपंच देखीने रुसाय नहिं वंचाय नही ठगाय नही॥ १८ ॥

पिंडस्थादिक ध्यान,गुणें आवी मले रे के ॥ गु०॥ पुलक आनंद ने अनुजव,ते आवी जले रे के॥ ते० ॥ व्यापे समता जाव, उदास

पणुं भजे रे के ॥ उ० ॥ जेह कुवासित संग
ति, बालकनी त्यजे रे के ॥ बा० ॥ १ए ॥

अर्थः—वली पिंमस्थ पदस्थादिक ध्यानना गुण आवीने मले, आश्रयें जेटलुं बद्मस्थस्वरूपनुं ध्यावुं ते पिंमस्थावस्था जाणवी. तथा घातिकर्मना अन्नावथी थयुं जे स्वरूप ते पदस्थावस्था. तथा केवलि नाव तथा प्रातिहार्यादिक प्रतिमा प्रमुख ते रूपस्थावस्था, इत्यादिकगुण उपजे, अने इत्यादिक गुण उत्पन्न थये थके पुलक जे हर्ष रोमांच ते उत्पन्न थाय. तथा आनंद जे निर्हेतुक चित्तप्रसन्नता पणुं ते थाय. अने अनुनव जे त्रिकालोत्पन्न शोक नयादिक ते नाश पामे, अने तेना नाश पामवाथी आत्मिक तत्त्वज्ञान चिंतवन चिंतवे. अनुनव सुख स्वाद गुण उत्पन्न थाय. समतानाव व्यापे, उदासपणुं ते तृप्तिनावें समपणुं तेने नजे, अने पूर्वोक्त गुण उत्पन्न थयेलो पुरुष ते बाल जनोनी, कुवासित जनोनी, अगीतार्थजनोनी संगतिनो त्याग करे ॥ १ए ॥

सावधान बहुमान, गीतारथने नजे रे के ॥
गी० ॥ आतम लान्नें तुष्ट, न परलान्नें रंजे

रे के ॥ न० ॥ कंप स्वेद श्रम मूर्छा, भ्रांति बलहीनता रे के ॥ भ्रां० ॥ इत्यादिक जे दोष, नहिं तस पीनता रे के ॥ न० ॥ २० ॥

अर्थः– वली ते पुरुष, सावधान एटले जागरूक भेदज्ञानी थइ बहु मानथी गीतार्थने भजे. तो हवे ते गीतार्थ कोने कहेवो? तो के श्रद्धा, ज्ञान, कथक अने करणी, ए चार वानां जेने शुद्ध होय, तेने गीतार्थजन कहेवो. कह्युं छे के ॥ गीयं भणई सुत्तं, अत्थो तस्सेव होइ वरकाणं ॥ उभएण य संजुत्तो, सो गीयत्थो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ वली तेनो आत्मा पोताना गुणोना लाभें करी संतुष्ट थाय. अने परपुद्गलना लाभें न रंजे. एटले आनंद पामे नहिं. वली भावाध्यात्म पवना भ्यासीनें कंप, स्वेद, खेद, मूर्छा, भ्रांति, बलहीनता, इत्यादिक दोषो होय नहिं, नीरोगनी पीनता एटले पुष्टता थाय ॥ २० ॥

वाचनादिक सज्झाय, धरे अनुप्रेष्यता रे के ॥ ध० ॥ होय प्रमादनी झलकी, कदापि न पिशुनता रे के ॥ क० ॥ चउदलथी षटवलय

थी, आगल संक्रमे रे के ॥आ० ॥ समकित थान प्रमत्त,थकी गुण चंक्रमे रे के॥थ०॥२१॥

अर्थः– १ वाचना, २ पृछना, ३ परावर्त्तना, ४ अनुप्रेक्षा अने ५ धर्मकथा, ए पांच सझायनी चारुता कुशलता ते अखेदादिगुण वधते होय. कदाचित् वचें वचें प्रमादनी झलकी होय, पण पिशुनता ते परदोषाजासें करी गुणी उपर प्रद्वेषता तो नज होय. वलतो पवन वली चारदलनुं कमल द्रव्यथी नाजीयें अने जावथी अनंतानुबंधियाने अजावें, तिहांथी आठ दलनुं कमल ते द्रव्यथी हृदयकमलें अने जावथी प्रत्याख्यानीया अप्रत्याख्यानीया तिहां ए बे चोकडी संक्रमे, एटले विरतिरूप पवन, ते ते जाव अध्यातमें संक्रमे, प्रवेश करे समकेतस्थानकथकी देशविरति प्रमत्त गुणठाणे जावअध्यातम पवन, चंक्रमे, प्रवेश करे २१

ऐंद्रिय सुख आधीन, अलीन पणुं रुचे रे के ॥ अ०॥ चक्रिशक्रसुखचक्र, थकी अधिकुं मचे रे के ॥ अ० ॥२२॥ इति ॥

अर्थः–अने ते पुरुष, यद्यपि इंद्रिय सुखने आधी

न होय तो पण तेने तेहमां अलीनपणुं रुचे, पण लीन पणुं रुचे नहिं. चक्रवर्त्ती, शक्रेंद्र, तेहना सुखथी पण समसंतोषें अधिक आत्मलाभें माचे. इंद्रिय सुख ते तेहनो उगार छे. एटले भावाध्यात्म जेहने वास्युं होय, ते ए पूर्वोक्तरीतें जाणे. ए ढाल पूर्ण थइ. आ गाथामां बीजां बे पदो जोइयें पण कोइ ठेकाणे मलतां नथी माटे बेज पदो छापेलां छे ॥ ११ ॥ इति ॥

॥ ढाल चोथी ॥

॥देशी बंगाली॥ राग काफी॥हृदयकमल ठवे पंचक बीज, अ-सि-आ-उ-सा-शुद्धधर्मनुं बी ज॥भवि ध्याइयें॥ हांरे मोरा आतम, परमा तमपद पाइयें॥ प्रणवसहित आदें पद वर्ण, नम पद आगल जोडे संकर्ण ॥ भ०॥ १ ॥ त्रिपदी पण पण वर्ण विचार, ए ध्यातां टले दोष अढार ॥भ०॥ अष्टदलें चउ बीज छे अ न्य, दर्शन ज्ञान चारित्र तप धन्य ॥ भ०॥२॥

अर्थः—हवे वली प्रकारांतरें एहज पवनाभ्यासनी बंगालीदेशीयें काफी रागें चोथी ढाल कहे छे. हृदय

कमलने विषे पंचकबीज एटले योगनां पांच बीज, (उवे के०) स्थापे. अ,सि,आ,उ,सा, ए पांच बीजने स्थापे. तेमां अ ते अरिहंताणं,सि ते सिद्धाणं,आ ते आयरियाणं, उ ते उवष्ठायाणं, सा ते सव्वसाहूणं. ए पांच बीजनां पांच नाम जाणवां. ते शुद्धधर्मनां बीज छे,एम जाणवुं. तेमां नमो अरिहंताणं ए पद वचमां थापीयें तथा चार दलनां चार पद न थाय यें पें वों रों लों एवं आदि अक्षर थापीयें, ए पांच समीर थापियें. इत्यादिक घणा नेदो छे. ते हे नवियो ! तेने ध्याइयें, तो हो मोरा आतम! एटले हे जीवसमान वाहाला एवा महारा साधर्मी नाइयो! एम ध्यान करवाथी परमात्मपदने जरूर आपणे पामीयें. तथा परमात्मपद पामवाने अर्थे प्रणव ते ॐकारसहित पांच वर्ण ते पूर्वोक्त अ–सि–आ–उ–सा–ए स्थापीयें. नव पद आगल जोडियें. तथा प्रणवसहित एक वर्ण जोडियें. तथा 'नम' ए अंतें जोडियें. तथा सकल वर्णे ॐ ए प्रथम अने अंते नमः एम जोडीयें. तथा काम, वशीकरण, उच्चाटन, लक्ष्मी, शरीरस्वास्थ्यने, काजें अनुक्रमें पें यें वों रों लों ए पांच वर्णने जोडीयें. तिहां ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं स्वूँ ए बीजपद

पांच,इत्यादि सर्व संकर्ण पंक्ति जाणे ॥ १ ॥ त्रिपदीना पांच वर्ण १ अरि २ सिद्ध ३ आय ४ उव ५ सव्वसा हूणं त्रिपदी तथा त्रिपदीमध्यें पांच वर्णना विचार ते अ–सि–आ–उ–सा–नो फेलाव छे. ए पद ध्यातां थकां अढार दोष, ते अढारपापस्थानकादिक सर्व नाश पामे. ते अढार दोषनां नाम कहेछेः–पांच अंतराय. छ हास्यादिक, एक काम, एक मिथ्यात्व, एक अज्ञान, एक निद्रा, एक अविरति, एक राग, एक द्वेष,ए अढारे दोष टले. एम समुदायें पांत्रीश गुणो ए प्रकारांतरें पांच दलनो विचार जाणवो. हवे अष्टदल कमलने विषे चार बीज अन्य छे, ते स्थापियें, ते कयां बीज छे? तो के दर्शन, ज्ञान, चारित्र अने तप, ए चार बीजनी स्थापना करियें. तेवारें नव दलनुं कमल कर्णिकायें करी युक्त थाय ॥ २ ॥

अथवा माया श्री वन्हि काम, साधारण ए
बीज अभिराम ॥भ०॥ अर्हं अक्षर अक्षर
हेत, प्राणाधिकवर भाव संकेत ॥भ०॥३॥

अर्थः–अथवा वली माया ते वशीकरण, श्री ते लक्ष्मी, वन्हि ते तेज,काम ते प्रताप,ए चार बीज ते साधारण

सर्वने इच्छारूपें मनोहर छे तो ते द्रव्ययोगीने साधवानें पण छे. तथा प्राणथी पण अधिक वरप्रधान जावसंकेत रूप एवा अर्हँ ए बे अक्षरोने जपतां अथवा ते अक्षरो कहेतां आत्मस्वरूप प्रत्यें जाणे, देखे ॥ ३ ॥

ह्रस्व दीर्घ प्लुतवर्ण विजाग, ध्यातां प्रगटे गुण परजाग ॥ज०॥ सरस सुधारस कुंज सु नीर, साम्य स्वजावनुं वाधे हीर ॥ज०॥४॥

अर्थः- ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, ए त्रण वर्णना विजाग ते उच्चारण काल विशेष मात्राने कहे छते तेहवा ध्याननी परिणति करते थके ध्यानना विजागने पामे. अर्थात् फेरफारमात्रा कर्याविना त्रणे वर्णनो उच्चार करे, तो ह्रस्वोच्चारथी वचनसिद्धि, अने दीर्घोच्चारथी कार्यसिद्धि, अने प्लुतोच्चारथी दरिद्रनाश, इत्यादिक गुणोने पामे. सरससमतारस रूप सुधाकुंजनो नीर एटले कांठो तेने पामे. अने साम्यस्वजाव ते रागद्वेषनी मंदतानुं हीर एटले रहस्य तेने वाधे, एटले वृद्धि प्रत्यें पामे ॥४॥

परमातम राजहंस सरूप, अवलोके जिनने अनुरूप ॥ ज० ॥ आत्मा आतम ध्यानें

लीन, मंत्रराजमां जिम जल मीन ॥न०॥५॥

अर्थः– तेवारें विषयकषायना नाशथी बहिरात्मा टाली पोतें आत्मापणुं तेराजहंस पणुं नजे. त्यार पछी जिनस्वरूप ध्यातो थको परमात्मापणुं अवलोके. ए मंत्रराजना जपमां लयलीन थयेलो आत्मा आत्मरूपें थाय. ते केवी रीतें? तो के, जेम जलमां माछलुं लयली न थाय, तेम आत्मस्वरूपमां ते लयलीन थाय ॥५॥

वाम दक्षिण पासें बिहुं धार, उपशम क्षप
क संकेत विचार ॥न०॥ज्ञान सहायें उपश
म धार, आतम वीर्यें क्षपकविचार ॥न०॥६॥

अर्थः– हवे वली वामनागें अने दक्षिणनागें जे ए मंत्रराजने धारे, तो ते अरिहंत बिंब देखे. तथा तन्नवें उपशम श्रेणी अने क्षपकश्रेणी पाम्यानी गता गति गणियें, तो तेथी नवनो पार पामीयें. कमलदल ध्यानें उपशम श्रेणिनी प्राप्ति थाय अने आत्मस्वरूप ध्यानें करी क्षपकश्रेणिनी प्राप्ति जाणवी. जिहां ग्रंथिन्नेद थाय छे, तिहां एक समय लगें अंतरें न्यून ता वृद्धिता कही छे. तिहां ज्ञाननी तीव्रतायें उपश

म श्रेणिनी धारा वधती थाय अने वीर्यनी धारा व धते क्षपकश्रेणिनी धारा वधती थाय. एम उक्त छे ६

बंध उदय सत्ताकृत भाग, ह्रस्वादिक स्वर योजन लाग ॥भ०॥ रहस्य उपांशु ने भाष्य विचार ॥ ध्यान समापत्तें निरधार ॥भ०॥७॥

अर्थः– तिहां अपूर्वादि करणें कर्मना बंध उदय सत्ताना स्ववीर्यें भाग पाडे छे. तिहां कोइक प्राणी स मकितथी पडे, केटलाएक संख्यकालें, असंख्यकालें, अनंतकालें, अने कोइ एकतो तद्भवमोक्ष अंतकृतके वली थाय छे, सर्वग्रंथी भेद करी अनिवृत्तिकरण पछी अंतरकरण करतां जे वीर्यनी यादृश मिथ्यात्वभेदन शक्ति तेहवी ते दशायें पामें. ते विचार ग्रंथांतरमां बहु छे माटे त्यांथी जाणवो. हवे गणवाना विचार त्रण कहेछे. रहस्य ते हृदयकमलें, उपांशु ते उष्ठपुटादि कनी चालणां नहिं. भाष्य ते वर्णस्थानादिक शुद्ध, ए ध्यानसमाप्तिसुधी सर्व साचववां. ध्यानारूढ तो प वनाभ्यासी होय ॥ ७ ॥

आतम परमातम गुणध्यान, करतो पामे पा

वन ठाण ॥ ज० ॥ होय सुदर्शन मेरु निःकं
प, निर्मल विधु परें आनंद जंप ॥ ज० ॥ ८ ॥

अर्थः– आतमा ते परमात्माना गुणनुं ध्यान करतो थको पावनठाण ते पवित्र स्थानकने पामे अर्थात् कर्मवियोजनारूप स्थानकने पामे, तेवारें ते प्राणीने सुदर्शन ते जला दर्शन रूप खायिक समकित ते मेरुनी पेरें निश्चल निःकंप थाय. निर्मल पूर्णचंद्रमानी पेरें आनंदनो जंप ते निराबाध सुख उपजे. मिथ्याभ्रांति विपर्यय, कुतर्कादिक जाय ॥ ८ ॥

पिंडपदस्थ अने रूपस्थ, रूपातीत चउविध
मन स्वस्थ ॥ ज० ॥ नाम थापना द्रव्य ने जाव,
ठउम पडिम केवल सिद्ध जाव ॥ ज० ॥ ए ॥

अर्थः–तेवारें पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, अने रूपातीत, ए चार प्रकारना ध्यानें पोतानुं मन स्वस्थ थाय, पण पुजलादिक पामीने अद्भुत लीनता न जासे, वली तेहीज स्वरूप कहे ठे. नाम, स्थापना, द्रव्य अने केवल जाव, ए चारने ठद्मस्थ, प्रतिमा, केवली, अने सिद्धजाव, ध्यानाधिरूढ थको जावे ॥ ए ॥

निरखंते होइ थिर परिणाम, शुनश्रु
त धृतिधर पुरुष निदान ॥ न० ॥ अ
वलंबें अविलंब न थाय, करण अ
पूर्वने वीर्य सहाय ॥ न० ॥ १० ॥

अर्थः—एह स्वरूपने निरखतां नावतां पोताना प रिणाम थिर योगें थाय, अशुनथी टले. ते पुरुष, शु नश्रुत, शुन धैर्य, तेहनो धारक, अनिदानी अण पु ङल इछक, एहवो थाय. एहवा ध्याननुं अवलंबन करे, तेने मोक्षप्रापणनो विलंब न थाय. शीघ्रकार्यका री थाय. अपूर्व करण वीर्यना सहायथी अनेक प्रका रनी नव्यता प्राप्त थाय ॥ १० ॥

सकलीकरण पचांगुलि जोड, अंगुष्ठ त
र्जनी मध्यम होड ॥ न० ॥ अनामि
काकनीनिका पंच, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रीं
स्वाहा प्रपंच ॥ न० ॥ ११ ॥ इति ॥५॥

अर्थः—सकलीकरण ते जापस्थिरीकरण, पंचांगुली जोड तें परमेष्ठि मुद्रका मध्येनुं मुद्रादिकनुं जोडवुं, अंगुष्ठ, तर्जनी ते अंगुष्ठ पासेनी तर्जनी अने मध्यमा ते

सर्वने मध्य अंगुली तेहनी होडीथी नीपजे, ते अना मिका ते कनिष्ठिकानी पासें जाणवी, कनीष्ठिका तेस वेथी नानी, ए पांच आंगली तिहां ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूं ह्रीं ए पांच बीजक जोडीने स्वाहादि नणियें. विस्तार करियें तो ह्रींनां पांच, रकारनां पांच, ककारनां पांच, गकारनां पांच, गकार लकारनां पांच, जोडियें वषट् स्वधाकार इत्यादि यथा चिंतित जोडियें. आ ढालमां सर्वमंत्रप्रपंच देखाडेलो छे ॥ ११ ॥ इति ॥

वली पण एनोज विशेष विचार कहे छे.

॥ ढाल पांचमी ॥

देशी चोपाइनी॥चौद महाविद्यानी सिद्धि, परममंत्रें परमानंद वृद्धि॥ चउसठि तास विधान विचार, सोल चउक जे कषाय निवार ॥ १ ॥

अर्थः—ए पूर्वनी ढालनी छेल्ली गाथामां कहेला मंत्रनोज विचार, आ चोपाइनी पांचमी ढालें करी कहे छे. आ परम महामंत्र छे. तेथी चौद विद्या सिद्धिने पामे. ते चौद विद्यासिद्धि महोटी छे. तेनां नाम कहे छे. एक नजोगामिनी, बीजी परशरीरप्रवेशिनी, त्रीजी रूप

परावर्त्तनी, चोथी स्तंभनी, पांचमी मोहनी, छठी स्वर्णसिद्धि, सातमी रजतसिद्धि, आठमी रससिद्धि, नवमी बंधक्षोभिनी, दशमी शत्रुपराजयनी, अग्यार मी वशीकरणी, बारमी भूतादिदमनी, तेरमी सर्वसंप त्करी, चौदमी शिवपदसाधनी, ए चउद विद्यासिद्धिने ते मंत्रनो जापक पामे, अने वली सर्वप्रकारें परमानंद ते पूर्वोक्तमंत्र गणवानां विधान चोसठ प्रकारनां छे. ते जुदे जुदे कार्यें आवे. ए द्रव्यविधान जाणवां अने भावविधान साधियें तो ए परमेष्ठि साधन चौद पूर्वक साधन शोल कषायनी चोकडी एटले शोल चोकुं चोशठ इत्यादि अनेक साधनभूत थाय ॥ १ ॥

तिहां मंगल चार तिहां चउज्ञान, मंगल
चार शरण ए ध्यान ॥ लब्धि अठावीश
नी भावना, नाद अनाहतनी पावना ॥२॥

अर्थः—तिहां चार मंगल ते मत्यादिक चार ज्ञान, अथवा चार मंगल ते अरिहंत, सिद्ध, साधु अने धर्म, एहीज चार शरण, ते द्रव्यथी चार कमल जाणवां तथा नाभिकमल, हृदयकमल, उदरकमल, अने क

मल. ए चार कमल अने अगावीश लब्धिनी ज्ञावना होय. अनाहत नाद अव्यक्तलक्षण परमप्रमोदनी पावना ते साहस सत्त्वादिकें करी होय ॥ २ ॥

पंचवर्णपरिपूतक पीठ, त्रिगुणयुक्त
निर्गुण सुपइठ ॥ पंचप्रस्थान प्रवर्त्तक
शिरें, तास धुरा वहवा अनुकरे ॥३॥

अर्थ– "अरिहंताणं" ए पांच वर्णेकरी परिपूतक एटले पावन परमपीठ एवुं अने त्रिगुण जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तेणेकरी युक्त अने निर्गुण जे सात्विक, राजस अने तामस युक्त सुपइठ एटले ज्ञलुं प्रतिष्ठित, पइठाण ते पांच प्रस्थानना प्रवर्त्तावक आचार्यादिक तेने शिरे प्रधान तेहनी धुरा जे गणधरपदादिक वहनधुरा तेने अनुकरे, एटले करे ॥ ३ ॥

पंचाचारें पावन थाय, तो ए पांच पीठ ल
हेवाय ॥ वीतराग नही पण उपशम
राग, ए ध्यानें होय इम परज्ञाग ॥ ४ ॥

अर्थः–पांच आचारेंकरि पावन थाय. ते पांच आचार कया ? तोके ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार,

तपाचार अने वीर्याचार, ए पांचे आचार ते पूर्वोक्त मंत्राराधनथी पवित्र थाय. तेवारें ए पांचपीठनुं लहे वाय, ते पामवुं थाय. तेथी वीतराग न होय; तो पण ते मनुष्य उपशमरागी तो होय. वली ए ध्यानथी एम परम प्रकृतिस्थ परत्नागगुणोत्कर्षनो धणी होय ॥४॥

देखे पांचुं एहना धणी, देखे पंच एह
ने पण गुणी॥ साध्य साधन साधकना
नेद, त्रण्ये ठे पण होय अनेद ॥ ५ ॥

अर्थः– ए पूर्वोक्तमंत्रराजना धणी ते पांचे अरिहंतादिक पदने देखे. अने ए पांचे गुणिपद, ते एह मंत्रना ध्यानारने पण देखे. साध्य, साधन अने साधक, एवा त्रण नेद ठे, पण ते साधकांतर्नूत ठे, अर्थात् ते त्रणे अनेदरूपें होय ॥ ५ ॥

अनय अकरण अहमिंडसमान, तुल्य
कल्पसाधन सावधान ॥ ए पाचेनां ठे
अहिठाण, धर्मध्याननुं ए मंमाण ॥ ६ ॥

अर्थः–. पांचे पदनी अवस्था थाय. ते पांचपदनी अवस्था एरीतें व्यापक ठे, ते कइ अवस्था? तो

के एक अजय, बीजी अकरण, त्रीजी अहमिंद्र, चोथी तुल्य, पांचमी कल्प, ए पांचे अवस्थाने साधवाने सावधान छे. हवे अजय ते अरिहंत, अकरण ते सिद्ध, अहमिंद्र ते आचार्य, तुल्य ते उपाध्याय, कल्प ते साधु, ए समान अवस्था छे ए पांचे अजय प्रमुख पदनी अवस्थानां ए अरिहंतादिक पांचे पदो, (अर्हिगण के०) अंतर्भावना जोतां समानअवस्था छे. अने धर्मध्यान एज मंडाण छे. साधु अप्रमादीने सकाम निर्जरा धर्मध्याननी मुख्यता छे ॥ ६ ॥

इत्यादिक बहुला विस्तार, बहुश्रुत मु
खथी ग्रहियें सार ॥ शुद्धप्रतीतधर जे
नर होय, मध्यें देखे श्रीजिन सोय ॥ ७ ॥

अर्थः—इत्यादिक बहुला एटले घणा विस्तार ते योग पातंजलि, योग शास्त्र, ध्यानरहस्य, मंत्रचूडामणि, ध्यानोपनिषद् प्रमुख परमेष्ठिपदकारिका, श्रीसिद्धसेन दिवाकरकृत अष्टप्रकाशिका, इत्यादिक ग्रंथाभ्यासी बहुश्रुतथी जाणवा. एटले तेमना मुखथी ग्रहण करियें तेमां शुद्धप्रतीतिने धारण करनार जे मनुष्य होय, तेहनें ध्यान धारणा होय. अथवा ते पुरुष, श्री जिनबिंबने

पोताना हृदयनी मध्यने विषे ध्यानमां देखे ॥ ७ ॥

तद्भवें त्रिभवें होय तस सिद्धि, अनुषंगिक तस नव निधि ऋद्धि ॥ लेश थकी ए बोल्यो जाप, इहां परमार्थनो छे बहु व्याप ॥ ८ ॥

अर्थः– एम पूर्वोक्त रीतें प्रतीति जे पुरुषने होय, तस एटले ते पुरुषने तद्भवें तेज भवमां अथवा त्रिभवें त्रणभवें सिद्धि होय. आनुषंगिक ते प्रसंगें इछा रहितपणाथी पण तेने नव निधि ऋद्धि सिद्धि प्राप्त थाय. ए जापनो विचार ते लव लेश मात्रथी बोल्यो देखाड्यो, परंतु एनो व्याप एटले विस्तार तो बहु ए टले घणो छे, ते गुरु कृपाथीज पामीयें. केमके तें अभ्यास साध्य छे ॥ ८ ॥

आज्ञापायविपाकसंस्थान, विचय ते चिंतननुं ते नाम ॥ लेश्या शुद्ध ने भाव विशुद्ध, बोधवीर्यें वैराग्यविबुद्ध ॥ ए ॥

अर्थः–हवे धर्मध्यानना चार पाया कहे छे, तेमां एक आज्ञाविचय,बीजो अपायविचय, त्रीजो विपाक विचय, चोथो संस्थानविचय. इहां विचय एटले चिं

तवननुं नाम जाणवुं. तेमां आज्ञाविचय ते वीतरागनी आज्ञानुं विचय एटले चिंतवन ते आज्ञाविचय जाणवो. बीजो अपायविचय जे राग अने द्वेष ते ध्याननने विघ्नरूप छे, तेहनुं चिंतवन, त्रीजो विपाकविचय ते शुभाशुभ कर्मनुं चिंतवन. चोथो संस्थानविचय, ते पुरुषाकृतिरूप लोक तेनुं चिंतवन जाणवुं. ते विशुद्ध लेश्या जे तेज पद्म शुक्लरूप भाव तेणेंकरी शुद्ध अने भावशुद्ध ते आत्मपरिणामनी निर्मलतायें ज्ञान, वीर्यनी विशुद्धता तेणें करी वैराग्य निराशंस परिणामनी विशुद्धियें धर्मध्यान उपजे ॥ ए ॥

स्वर्गहेतु कहियो धर्मध्यान, द्रव्योदारें
भाव प्रधान ॥ हवे भाखुं जे शुकल
ध्यान, ते अपवर्ग देवाने प्रधान ॥१०॥

अर्थः—ते पूर्वोक्त धर्मध्यान स्वर्गप्राप्तिनुं कारण कहेलुं छे. वली मैत्री प्रमोदकारुण्य माध्यस्थादिक भावना तथा पदस्थ पिंमस्थादि, तथा खंति अज्जवादिक, ए सर्व धर्मध्यानादिकनां अवलंबन जाणवां एटले तें सर्व धर्मध्याननां सहायक छे. वली द्रव्योदारें एटले उदारद्रव्यें करी भावप्रधान ते भावनीप्रधानता थाय.

हवे चोथुं शुक्लध्यान ते नाखुं केतां कहुं बुं. ते शुक्ल ध्यान अपवर्ग जे मोक्ष तेने देवाने प्रधान ते धोरी मुख्य छे. धर्मध्यानथी विशुद्ध विशुद्ध हेतुकारणें प्रधा नन्नावें संघयण प्रधान श्रुतादिक हेतुजनित छे ते कहेछे.

प्रथमन्नेद नानाश्रुतविचार, बीजुं ऐक्यश्रु
तसुविचार ॥ सूक्ष्मक्रिय उच्छिन्नहक्रिया,
अप्रतिपात चउन्नेद ए लह्या ॥ ११ ॥

अर्थः—ते शुक्लध्यानना चार न्नेद कहेला छे. तेहमां प्रथम न्नेदनुं नाम नानाश्रुतविचार, पृथक्त्वसवित र्कसविचार, बीजो न्नेद ते ऐक्यश्रुत एकत्वपृथक्त्व अ वितर्क सविचार, त्रीजो न्नेद ते सूक्ष्मक्रिय एटले सू क्ष्मक्रियाप्रतिपाति, चोथो न्नेद ते उच्छिन्नक्रिया अप्र तिपाती ए चारन्नेद लह्या एटले शास्त्रोमां लीधेला छे.

एकगमि पर्याय अनुसरण, श्रुतथी द्रव्य
विषय संक्रमण ॥ अर्थव्यंजन योगांतरें था
य, प्रथम न्नेद ते इम कहेवाय ॥ १२ ॥

अर्थः— आ पूर्वोक्त शुक्लध्यानना चारन्नेद कह्या, तेमां प्रथम बे पाया, षट्द्रव्यना जे पर्याय छे, ते पर्याय द्रव्यद्रव्यने जुदा पाड्याविना एकगमि एटले एकस्थ

लें अनुसरण ते अनुसरवुं, सर्व द्रव्यने विषे प्रवर्त्तन ते श्रुतज्ञानथी द्रव्यनेविषे सकल विषयनुं संक्रमण अने अर्थव्यंजन ते पदार्थना व्यंजक ते योगांतरने विषे मन, वचन, कायादिक योग थाय, एम प्रथम भेद शुक्ल ध्याननो कहेवाय. ए ध्यातां थकां केवली थाय॥ १२॥

हवे बीजो शुक्लध्यानना भेद कहे छे.

एकरीतें पर्यायने विषे, अर्थव्यंजन
योगांतर रुषे ॥ श्रुत अनुसार थकी
जे व्यक्त, ते बीजो एकत्व वितर्क॥१३॥

अर्थः—एकरीतें एकपर्यायनी रीतें सकलद्रव्यना पर्यायनी रीतें पहोंचवावे. तथा अर्थव्यंजन योगांतर एटले अर्थपदार्थव्यंजन जे योगांतर तेने करतो रुषे एटले हर्षे. तेहमां पहोंचे, श्रुत अनुसार थकी एटले श्रुत शास्त्रने अनुसारें एकद्रव्यना एक पर्यायांतरनी जे व्यक्ति थाय, ते एकत्ववितर्क सविचारनामा बीजो भेद जाणवो

हवे शुक्लध्याननो त्रीजो भेद कहे छे.

जे निर्वाण समयने प्राग, निरुद्ध योग
केवलिने लाग ॥ सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती
नाम, त्रीजुं शुक्ल ध्यान ए नाम ॥ १४ ॥

अर्थः- निर्वाण कालथी अंतरमुहूर्त्त, प्राग एटले पहेला निरुद्धयोग एटले जे कायादि योगना रोध केवलीने लाग एटले केवली करे छे, ते सूक्ष्मप्रतिपात एवे नामें छे, एटले सूक्ष्मक्रियाने निर्मेषादिक पणे प्रतिपाती एटले सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति तेहथी पडशे, आघो जाशे, तेमाटे प्रतिपाती कहीयें. ए त्रीजुं शुक्लध्याननुं सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती नामें पायो जाणवो ॥ १४ ॥

शैलेशीगत जे निश्चल योग, लेश्यातीत
जिहां नहि परजोग ॥ नामें उछिन्न क्रिय
अप्रतिपात, चोथो शुकलभेद विख्यात॥१५॥

अर्थः-शैलेशीगत ते शिलाजे पथर तेनो जे समुदाय ते शैलकहियें अने शैल जे पर्वत तेनो ईश एटले स्वामी एवोजे मेरुपर्वत तेनी पेरें निश्चल ते निःकंप कायकादिक सकल योगरोधन लक्षण लेश्यातीत ते शुक्ललेश्या थकी अतीत छे वली जिहां नहि परजोग एटले जे ठेकाणें परजोग कोइ न मले. त्रिभाग न्यून शरीर घन प्रदेशी अस्पृश्यमान आकाश प्रदेशी उछिन्न सर्वक्रियायें अप्रतिपाती ते उछिन्नक्रिय अप्रति

पाती नामें चोथो शुक्लध्याननो विख्यात एटले प्र सिद्ध नेद जाणवो ॥ १५ ॥

त्रियोगयुक्त मुनिवरने होय, आद्य डुनेद
श्रेणीगत सोय ॥ निज शुद्धातम द्रव्यनुं
ध्यान, एक योगें बीजुं अभिराम ॥ १६ ॥

अर्थः– एक शुक्लध्यान, जे मनादि शुन त्रियोगें युक्त, ते अप्रमत्त, सुविशुद्ध, यथाख्यात चारित्री मुनि वरने होय. तें शुक्लध्यानना सोय केतां ते आद्य डुनेद ते आदिना बे पाया क्षपकश्रेणिगत मुनिने होय, तेमां एक नेदें निज ते पोताना शुद्धातम द्रव्यनुं परिज्ञान ध्यान थाय. तथा बीजे नेदें शुद्धातम द्रव्यना गुण पर्यायनुं अभिरामपणुं थाय ॥ १६ ॥

तनु योगीने त्रीजुं होय, चोथो नेद अ
योगें जोय ॥ मन थिरता छद्मस्थने
ध्यान, अंगथिरें केवलिने जाण ॥१७॥

अर्थः–हवे तनुयोगीने एटले केवल काययोग रो धन करनार एवा केवली नगवानने पूर्वोक्त शुक्लध्या ननो त्रीजो नेद होय, तथा ते शुक्लध्याननो चोथो

नेद, अयोगी केवलीने संसार प्रांतें होय. तथा छ
द्मस्थने ध्यान ते मनथिरता एटले मननी एकाग्रता
यें होय. अने अंगथिरें एटले केवलीने केवल योगनी
निश्चलता ते ध्यान जाणवुं मननो व्यापार केवलीने
न होय. एवी रीतें जाण एटले जाणवुं ॥ १७ ॥

चिदानंद परमात्म अमूर्त्त, निरंजन
सवि दोष विमुक्त ॥ सिद्धध्यान ते रू
पातीत, ध्याता तन्मयतानी रीत॥१८॥

अर्थः— चिदानंद एटले ज्ञाननु परमानंद तथा प
रमात्मा अमूर्ती अरूपीनिरंजन ते रागद्वेष रूप अंज
नथी रहित अने सर्वदोषोयें करिविमुक्त एवा श्री
सिद्धनुं ध्यान ते रूपातीत ध्यान कहियें. ते ध्याने
ध्याताने तन्मयपणुं रूपातीतपणुं कहीयें ॥ १८ ॥

कर्मनवोपग्राही चार, लघु पंचाक्ष
रनो उच्चार ॥ तुल्यकाल शैलेशी ल
हि, कर्मपुंज सघलो ते दही ॥ १९ ॥

अर्थः—ज्यां आयु, नाम, गोत्र अने वेदनी ए
नवो पग्राही चार कर्म रहे. तेहनो लघुपंचाक्षरनो

उच्चारमात्र काल जाणवो. शैलेशी जेटलोज अयोगीनो काल तुल्य लही केतां पामीने ते प्राणी सघला कर्म पुंजने दही केतां बालीने लोकाग्रें जाय ॥ १९ ॥

धूम अलाबु फल दंमाभाव, चक्रादिक
रीतें गति भाव ॥ समय एकें लोकांतें
जाय, सिद्ध सरूप सदा कहेवाय ॥२०॥

अर्थः—धूम एटले धूवाडो इंधनथी छूट्यो ते जेम आकाशमां जाय, तथा अलाबु जे तुंबडुं ते जेम जल मां दबाव्युं छतुं जलनी उपर आवे, तथा जेम एरंम फल पाकुं उंचुं जाय. तथा जेम एकवार दंमथी कुंभार नो चाकडो फेरव्यो तो पछी दंमना अभावें करी पण पूर्वाभ्यासथी फर्या करे, तेम जीव पण एक समयमां लोकांतें जाय, धर्मास्तिकायना अभावथी अलोकमां पण न जइ शके. तिहां सदा सिद्ध स्वरूपी कहेवाय २०॥

सादि अनंत अतींद्रिय सुक्ख, भागां कर्म
जनित सवि डुःख ॥ भवनाटक संसारी
तणां, जाणे देखे पण नहिं मणा ॥ २१ ॥

अर्थः—एवी रीतें सिद्धस्वरूप होवाथी सादि एटले

जे वखत मोक्ष गयो ते दिवसनी आदि थइ पछी अनंत एटले जेनो अंत नथी तथा अतींद्रिय एटले इंद्रिय साध्य सुख नथी ते सुखथी अतीत, एवुं सुख प्राप्त थाय. तथा तेनां कर्मजनित एटले कर्मोथी उत्पन्न थयेलां सर्व दुःख, नागी गयां अने तिहां रहेता थकां सिद्ध नगवान, नव एटले संसार तेनां जे नाटक छे ते सर्व जोयां करे. वली विशेषें करी जाणे सामान्यरीतें देखे छे, पण कशी वातनी मणा नथी. कारण के, नाटक करनार करतां नाटक जोनारने सुख वधारे होय ॥ २१ ॥

इणिपरि ते परमेष्ठी मंत्र, शिवसुख साधननो ए तंत्र ॥ नेमिदास कहे एम विचार, ज्ञानविमल प्रनुनो आधार ॥२२॥

अर्थः— एणीपरें परमेष्ठी मंत्रनो महिमा कह्यो. ते मोक्षनां सुख साधवानो महोटो तंत्र एटले उपाय छे. साहनेमिदासरामजी एवो नवकार मंत्रनो विचार कहे छे. ते श्रीज्ञानविमल सूरिगुरुना वचननो आधार पामीने पोतानुं पण कांइक अनुनव सिद्ध आत्मस्वरूप प्राप्त थके, यथामति वर्णन कह्युं ॥ २२ ॥

॥ छप्पय ॥

॥श्रीअरिहंतपद वदनि, नालतल सिद्ध
विराजे ॥ नावाचारज कंठ, वायग मुणि
बाहु समाजे ॥ चूलापद चउपीठ, सकल
सारीर पइठिय ॥ आतमने परमात्मा, ए
क, नाव थई मनमें रमे, त्रितय नेद अ
नेदथी, ते ज्ञानी पद जन नमे ॥ १ ॥

अर्थः— छप्पय ते षट्पदकाव्य जाणवुं. हवे चउ
दराज लोकनो पुरुषाकार बनावी कहे छे. तिहां अ
रिहंत पदनी स्थापना ते वदनि एटले मुखने विषे
तथा नालतल एटलें नाल स्थलने विषे सिद्धनी स्था
पना करियें. नावाचार्य ते सुविहित गणि आचार्य,
तेहनी कंठ एटले गलें स्थापना करियें. वायग ए
टले उपाध्याय अने मुनि, एटले साधु ए बे ते
बाहु समाजें ते बेहु बाहुना समाजमां स्थापीयें. चू
लिकानां चार पद ते पृष्ठनागें स्थापीयें. ए रीतें स
कल सारीर पइठिय एटले सर्व शरीर प्रतिष्ठित स्था
पियें. ए पुरुषातम रूपनी स्थापना ध्यानमां अ

धिष्ठित करियें. जेवारें अंतर आतम अने परमातम एक नाव एकरूप थइ मनमां रमाडियें तेवारें त्रितय नेद अन्नेदथी एटले ध्याता ध्यान अने ध्येय ए त्रणे नेद अन्नेद पद पणे एकरूप ध्येयपणे थाय. ते ज्ञानीपदने जन एटले सर्व जन नमे छे ॥ १ ॥

वली बीजो नेद ध्याननो कहे छे.

ॐ अर्हत्पद पीठ, सिद्ध नालें थिर कीजें॥ ना
सा गणि उवज्झाय,साहु दोइ नयन नणीजें॥
कंठ हृदय ने उदर, नानि चउकमलें जाणो॥
दंसण नाण चरित्त,तपथकी चउपद आणो॥
सिद्धचक्रनी मांमणी,अंतर आतम नाव तें॥
परमातम पदवी लहे,कर्मपंक सवि जावतें॥२॥

अर्थः— वली ध्याननो बीजो प्रकार कहे छे. ॐ अर्हत्पद पीठ ते ॐकारपूर्वक अरिहंत पद पगें स्थापियें. कारण के, ते अरिहंतनो मार्ग कहेवाय. वली सिद्धने नालने विषे थिर करीयें. कारणके सिद्ध शिलाकार छे तथा सकल कर्म टाल्या छे ते माटे. तथा नासिकायें गणि एटले आचार्यने स्थापियें कारण ते

सर्व शोजाना धारक छे. तथा उपाध्याय अने साधु ए बेहु लोचन जाणवां. अने कंठकमल, हृदयकमल, उदर कमल, नाजिकमल, ए चउकमलें एटले ए चार कमलें ए चार पदनी स्थापना जाणवी. ते चार पदनां नाम कहे छे. दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, ए चउपद एटले चार पदनुं स्थापन,चार कमलने विषे आणो. ए मंत्रनो प्रयत्न जे वीर्य फोरववुं, ते पंमित वीर्यमय श रीरी जाणवो. ए सिद्ध चक्रनी मांमणीयें अंतर आत्मा जावतां छतां परमातम पदवीने पामे. कर्मपंक सवि जाय एटले सर्व कर्मरूप कचरानो नाश थाय, तेनो नाश थये हुंते परम सिद्धपणुं पामे ॥ २ ॥

हवे तेहनो ध्यायक कहेवो होय? ते कहे छे.

॥ शांत दांत गुणवंत, संतना सेवाका
री ॥ वारित विषय कषाय, ज्ञान दर्शन
सुविचारी ॥ स्यादवाद रसरंग, हंसपरि
शमरस जीले ॥ शुजपरिणाम निमित्त,
अशुज सवि कर्मने खीले॥तादृश नर प
रमेष्ठिपद,साधननां कारण लहे ॥ साह
रामजी सुतरत्न,नेमिदास इणिपरें कहे ॥३॥

अर्थः—शांत ते उपशम युक्त, दांत ते इंद्रियदमन, गुणवंत ते उदारादिकगुणयुक्त, संत एटले सज्जनजन तेनी सेवानो करनार, अने विषय कषायने जेणें वाल्या छे एवो तथा ज्ञान दर्शननो नलो विचार करनार अने स्याद्वाद रूप क्षीरसमुद्रने विषे रंगें करी हंसनी पेठें विवेकगुणोयें करि शमतारूप रसमां ऊीले वली शुन्न परिणामें वर्त्तें एटले शुन्नपरिणाम निमित्त मेलवे तथा सर्व अशुन्नकर्मने आवतां खीले एटले रोके इत्यादि गुणवान् पुरुष जे होय, ते परमेष्ठिमंत्र साधननां कारण लहे. अर्थात् ए पूर्वोक्तमंत्रने आ छप्पयमां कहेला गुणवालो पुरुष, पोताना चार कमलने विषे स्थापे. एम रामजी शाहनो पुत्ररत्न, नेमिदास कहे छे ॥ ३ ॥

॥ ढाल चंद्रावलाना रागमां ॥

॥ए पांचे परमेष्ठिना रे, साधनना आम्नाय ॥ विद्या प्रवाद दशमपूर्वमां रे, नाख्या श्री जिनराय॥ श्रीजिन राय तणा जे गणधर, वर्द्धमान विद्याना आगर ॥ वर्द्धमान नावें करि तपिया, तस अनु नावें सकल कर्म खपियां ॥ जी नवि

कजन जी रे ॥ ध्यान धरी आनंद, प्रमाद दूरें करी रे ॥ पामो परमानंद, नवजलनिधि तरी रे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥

अर्थः— ए पांचे परमेष्ठिना साधननो आम्नाय एटले रहस्य ते विद्याप्रवाद नामें दशमा पूर्वमां श्रीजिनराजें नांखेलुं बे, तथा वली श्रीजिनराजना गणधर, पूर्वधर वली वर्द्धमान विद्याना धणी एवा सूरीश्वर वली वर्द्धमान एटले वधते नावें करि जे विविध तपना धारक एवा पुरुषोना तस अनुनावें केतां ते पांचे परमेष्ठिना मंत्र साधनना महिमायें करी सकलकर्म खपी गयां बे. तेमणे ए नाव कह्या बे माटें हे नविक जनजी! प्रमाद दूर करी आनंद धारण करी संसाररूप जलनिधि तरीने परमानंदने पामो. ए अमारुं आशीर्वचन बे॥ १॥

प्राणायामादिक कह्या रे, रूढिमात्र ते जाण ॥ शुन्न संकल्पें थापीयें रे, मनडुं पावन ठाण ॥ हानि होय तव अशुन्नह केरी, नासे बाह्य अन्यंतर वेरी ॥ जितकाशी जगमांही नेरी, वाजे कीर्त्ति दशोदिशि शेरी ॥जी०॥२॥

अर्थः– प्राणायामादिक जे सकल पवनना नेदो कह्या छे, ते रूढीमात्र एटले प्रायःअभ्यास मात्रज छे पण ते शुनसंकल्पें जो मन थापियें तो मन छे ते पावन गण एटले पवित्र स्थानपणुं पामे. ते तो शुन संकल्प, ध्यान विना नज थाय. ते सकल ध्यानमां पण परमेष्ठि पद ध्यान छे ते पुष्ट आलंबन जाणवुं. ते ध्यान जेवारें करे तेवारें अशुन कर्मनी हानि होय. बाह्य अभ्यंतर वैरी जे मोहादिक तेनो नाश थाय. जेवारें अंतरंग वैरीनो नाश थाय, तेवारें ते पुरुष जितकाशी एटले जेम संग्राममां जय वालो थाय तेम थाय. तेनी दशे दिशानी शेरीयें कीर्त्तिनी नेरी वाजे ॥ २ ॥

सिद्धरसादिक स्पर्शथी रे, लोह होय
जिम हेम ॥ आतमध्यानथी आतमा रे,
परमानंद लहे तेम ॥ जिम सूतो नर
ऊठी जागे, जाणे सकल वस्तु विनागें ॥
तिम अज्ञान निद्राने नाशें, तत्त्वज्ञा
ननो होय प्रकाश ॥ जी० ॥ ३ ॥

अर्थः–सिद्ध रसादिक कूपीना स्पर्शथी जेम लोह

मांथी हेम थाय, तेम परमात्मानां ध्यानथी आत्मा जे छे, ते परमानंदपणुं पामे छे. ते केनी पेठें ? तोके सूतेलो पुरुष, जारें जागे, तारें पाछला सर्व कार्य सांजरे, अने सकल वस्तु विजाग एटले पाछला कृतकार्यना जे सर्व विजाग तेने जाणे तेम अज्ञानरूप निद्राना नाशें करी आत्माने तत्त्व ज्ञाननो प्रकाश थाय॥ ३॥

जन्मांतर संस्कारथी रे, अथवा सहज स्वजाव ॥ अथवा गुरु प्रसादथी रे, पामे तत्त्व जमाव ॥ पावकथी जिम कंचन शुद्ध, तत्त्व ज्ञानथी आतमबोध॥ आपें संवेदी अन्य प्रमोदी, जाणे सर्व विजावविनोदी ॥जी०॥ ४ ॥

अर्थः- जन्मांतरना संस्कारथी अथवा सहज स्वजाव ते प्रयास वगर अथवा गुरु प्रसादथी ते पूर्वोक्त तत्त्वज्ञान जमावने प्राणी पामे. तेवारें जेम पावकथी कंचन शुद्ध थाय छे, तेम तत्त्व ज्ञानथी ते प्राणीने आत्मबोध थाय. आपें संवेदी एटले पोतें सम्यक् ज्ञाननो जाण थाय, अने अन्यप्रमोदी एटले अपरजनने प्रमोद उत्पन्न करें सर्व विजावनो विनोदी एटले वेत्ता थाय, स्वजावपणें प्रवृत्ते ॥ ४ ॥

बहिरात्मा खात्रपात्र छेरे, अंतर आतमबीज॥ थापी शुभसंकल्प नीरें, सेचन नीर लहीज॥ दीजें पुण्यप्रकृति पुष्पादिक, प्रशस्त पणे जे थाय रागादिक ॥ परमातम अनुभव फल पामी, ऐक्यभावथी तेह अकामी ॥जी०॥५॥

अर्थः— बहिरातम ते इंद्रियार्थानुकूल आत्मा ते खात्रपात्र छे एटले खात्र रूप खेतर छे. तेमांहे अंतरात्मा शुद्धभव्यरूप जीवद्रव्य ते बीज छे. ते थापि एटले तेने वावीने शुभ संकल्प रूप नीरें सींचीयें, तेवारें तिहां दानादिक देतां थकां जे पुण्य प्रकृति बंधाय ते पुष्पादिक जाणवां. अने तेहज प्रशस्त रागादिक ते सर्व कारण, साधननां जाणवां. पछी ते प्राणी एम पूर्वोक्तरीतें करवाथी परमातम अनुभव रूप फलने पामे. तेहज ऐक्यभावथी जे अकामीपणुं ते परमानंद जाणवो ॥ ५ ॥

अभ्यासें करि साधियें रे, लहि अनेक शुभयोग ॥ आतमवीर्यनी मुख्यता रे, ज्ञानादिक सुविवेक ॥ छेक कहे व्यवहार विचारी, अशुभ

त्यागथी शुद्ध आचारी॥गुणठाणा अनुगत गु
ण धारी, शुं जाणे अविवेकी भिखारी॥जी०॥६॥

अर्थः—अनेक शुभयोग लहीने अभ्यासें करी सा
धियें. आत्मवीर्यनी मुख्यतायें करि ज्ञानादिकनी सु
विवेकतायें करी, जे छेक भाष्या होय ते व्यवहार विचा
रीने सकल कार्यनी स्थिरता राखे. अने अशुद्ध आ
चारनो त्याग करे, शुद्ध आचारनो आदर करे. ते
मनो गुणठाणाने अनुगत तत्सदृश गुण धारी होय, ए
टले आचार व्यवहार होय. आ सर्व वात अविवेकी
भीखारी ते शुं जाणे? कांहीज जाणे नहि ॥ ६ ॥

धर्मध्यान अवलंबनें रे, होये थिर परिणा
म ॥ आलंबनमां मुख्य छे रे, ए परमेष्टीना
म ॥ धाम पापनां जे वली हुंता, ते पण भव
ने पार पहूता ॥ तिर्यंचादिकने शुं कहियें,
अवरगुणीजनने ए लहियें ॥ जी० ॥ ७ ॥

अर्थः— धर्मध्यानना आलंबनें करी, परिणामनी
स्थिरता होय. वली संसारमां आलंबन तो अनेक
छे, तेमांहे पंच परमेष्टि मंत्रपदनुं आलंबन तो मुख्य

छे. एना प्रभावथी पापना घर जेवा चिलाती पुत्र सरीखा हता, ते पण संसारना पारप्रत्यें पाम्या छे. तो वली तिर्यंचादिकनुं तो शुंज कहियें? तो अपर एटले बीजा गुणीजनने उपगारी थाय, तेनी तो वात ज शी करवी ॥ ७ ॥

मोक्षमार्गने संमुहो रे, ध्वस्त कर्मना मर्म
॥ धर्मशर्मनी भूमिका रे, टाल्या भवना घर्म
॥ नर्म थइने सवि भवि प्राणी, उपदेशो जिम
जिनवरवाणी ॥ स्यादवादनी ए सहि नाणी,
सकल सुरासुरें जेह वखाणी ॥ जी० ॥ ८ ॥

अर्थः—मोक्षमार्गने संमुहो एटले सन्मुख एवो अने ध्वस्तकर्मना मर्म एटले टाल्या छे कर्मना मर्म जेणें अर्थात् निःकामी प्राणी जे छे ते धर्मशर्मनी भूमिका एटले धर्मना सुखोनी भूमिका जाणवी. वली जेणें भव जे संसार तेना घर्म एटले संताप टाल्या छे एवा थका नर्म केतां सुंवाला थइने सर्व भविप्राणीयो तमें जिमजिन वर वाणी उपदेशो छे, तेम उपदेश करो. स्याद्वाद जे वीतरागनुं शासन तेहनी एहीज सहीनाणी एटले एंधाणी छे, जे पंचपरमेष्टि पद ध्यावे ए आत्मा परमा

त्मा थाय. ते वात अमेंज कहियें छैयें, एम नथी. पण सर्व सुर असुर तेणें पण एने एज रीतें वखाणी छे ॥ ७॥

सीधा ने वलि सीझशे रे, सीझे छे जे जीव ॥ ते
हने एह उपाय छे रे, नवजल पडतां दीव ॥
देवराज सरिखा जस दास, नहि परनाव तणी
जस आस ॥ वासना एहनी नव नव होजो,
परमातमदृष्टें करि जो जो ॥ जी० ॥ ए ॥

अर्थः—जे अनेक प्राणी सीधा एटले कर्मथी मुक्त थइ आत्मस्वरूपी थया. अने वली सीझशे एटले आगामिक कालें सिद्ध थशे तथा वली जे जीव, वर्त्तमान कालमां पण महाविदेहादिकोमां सिझे छे. ते सर्व प्राणीयोने एहज उपाय छे. एटले परमेष्ठि मंत्राराधन करवुं ते उपाय छे. वली संसार समुद्रमां पडता प्राणीनें ते परमेष्ठिपद द्वीप सरीखो छे. वली परमेष्ठिना देवराज केहेतां इंद्र पण दास थइ रह्या छे. अने जस एटले जे परमेष्ठि ध्यान ध्याता पुरुषने परनाव एटले पुद्गलनावनी आशा वांछा नथी माटें नवोनव संसारमांहे ज्यां सुधी रहेवुं थाय, त्यां सुधी एहीज वासना चित्तमां रहेजो. ते परमातम दृष्टियें करी तमें जोजो ॥ ए ॥

तत्त्व तणी जिहां संकथा रे, तेहज परम निधान ॥ ज्ञानविमल गुण संपदा रे, पामे गामो गाम ॥ नाम एहनुं मंगल महोटुं, एहथी अवर जे ते सवि खोटुं ॥ नेमिदास कहे एह आराधो, चार वर्ण पुरुषारथ साधो ॥ जी० ॥ १० ॥

अर्थः—जिहां तत्त्वनी संकथा, एटले ज्ञान, दर्शन, चारित्रना विचारनी वार्त्ता, तेहीज जोतां परम निधान एटले अक्षय वस्तु छे. ते प्राणी केवलज्ञाननी विमल एटले निर्मल संपदा गामोगाम पामे. आ ध्यानमाला नुं नाम महोटुं मंगल रूप छे. एथी अवर जे संसार मां वस्तु छे ते सर्व कर्मबंधननां गाम एटले स्थानक रूप छे तेथी ते खोटां जाणवां. माटे नेमिदास कहे छे के ए ध्यानमाला ग्रंथने एकमने सेवो आराधो अने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ए चारे वर्ण ते धर्म, अर्थ, काम अने मोक्ष ए चारे पुरुषार्थने साधो, सकल प्राणी कंठें करो. ए ध्यानमालानो बालावबोध श्रीज्ञानविमलसूरिजीयें रहस्य जाणवा माटें कह्यो. माटे ए रहस्य समजीने हे भव्यजनो!

तमें पंचपरमेष्ठि पद आराधन करवामां तन्मय थजो के जेथीकरी महामंगल निवास थाय ॥ १० ॥

॥ कलश ॥ एम ध्यानमाला गुणविशाला, नविक जनकंठें ठवो ॥ जिम सहज समता सुरलतानां,सुख अ नोपम अनुनवो॥ संवतरसऋतु मुनि शशी (१७६६) मित, मास मधु उज्जल पखें ॥ पंचमीदिवसें चित्तविक से,लहो लीला जिम सुखें ॥१॥ श्रीज्ञानविविमल सूरि गुरुकृपा लही,तास वचन आधार ॥ ध्यानमाला एम रची,नेमीदासें व्रतधार ॥२॥ इति ध्यानमाला समाप्त

अर्थः—हे नविकजनो ! गुणोयें करी विराजित ए वी आ ध्यानमाला, पुष्पमालानी पेठें पोताना कंठने विषे स्थापो. जेणे करी अनुपम ते स्वानाविक समता रूप जे कल्पवृक्षलता तेना सुखने प्राप्त थाउ. आ ध्या नमालाग्रंथ रस एटले ठ तथा ऋतु एटले ठ तथा मुनि एटले सात अने शशी एटले एक एम १७६६ ना वरसमां मधु एटले चैत्र मासमां उज्ज्वल पक्षें पांचम ने दिवसें विकस्वर चित्तें रची ठे. माटे तमो लीलायें करी ते ग्रंथना सुखने लहो. श्रीज्ञानवि मल सूरि गुरुनी कृपा लहीने तेना वचनना आ धारथी ध्यानमाला नेमिदासें व्रत धारण करीने

रची छे ॥ १ ॥ इतिश्री नेमिदासविरचित पंचपरमेष्टि मंत्रराज ध्यानमाला ज्ञानविमल सूरिविरचित बालावबोध सहिता समाप्त ॥

अथ

॥ श्रीचिदानदजी कृत पुग्गलगीता प्रारंभः ॥

॥ क्या धन में गदाबे, एकदिन माटीमें मिलजाना ॥
॥ ए देशी ॥

॥ संतो देखीयें बे, परगट पुग्गल जाल तमासा ॥ ए आंकणी ॥ पुग्गल खाणों पुग्गल पीणों, पुग्गल हुंथी काया ॥ वर्ण गंध रस फरस सहु ए, पुग्गलहू की माया ॥ संतो० ॥ १ ॥ खान पान पुदगल बनावे, नही पुदगल विण काय ॥ वर्णादिक नहीं जीवमें बे, दीनो भेद बताय ॥ सं० ॥ २ ॥ पुग्गल काला नीला राता, पीला पुग्गल होय ॥ धवला युत ए पंचवरण गुण, पुदगलहुंका जोय ॥ सं० ॥ ३ ॥ पुग्गलविण काला नहि बे, नील रक्त अरु पीत ॥ श्वेतवर्ण पुग्गल बिना वे, चेतनमें नही मीत ॥ सं० ॥ ॥ ४ ॥ सुरभिगंध डुरगंधता बे, पुग्गलहुमें होय ॥ पुग्गलका परसंग विना ते, जीवमांहे नवि होय ॥ सं०

॥ ५ ॥ पुज्जल तीखा कडवा पुज्जल, फुनि कसायल्ला क
हीयें ॥ खाटा मीठा पुज्जल केरा, रस पांचुं सर्दहीयें
॥ सं० ॥ ६ ॥ शीत उष्ण अरु काठा कोमल, हलु
वा जारी सोय ॥ चिकणा रूखा आठ फरस ए, पु
ज्जलहुमें होय ॥ सं० ॥ ७ ॥ पुज्जलथी न्यारा सदा
जे, जाण अफरसी जीव ॥ ताका अनुजव जेद ज्ञा
नथी, गुरुगम करो सदीव ॥ सं० ॥ ८ ॥ क्रोधी मा
नी मायी लोजी, पुज्जल रागें होय ॥ पुज्जलसंग वि
ना चेतन ए, शिवनायक नित जोय ॥ सं० ॥ ए ॥ न
र नारी नपुंसक वेदी, पुज्जलके परसंग ॥ जाण अ
वेदी सदा जीव ए, पुज्जल विना अजंग ॥ सं० ॥ १० ॥
बूढा बाला तरुण थया ते, पुज्जलका संग धार ॥ त्रिहुं
अवस्था नही जीवमें, पुज्जलसंग निवार ॥ सं० ॥ ११ ॥
जन्म जरा मरणादिक चेतन, नानाविध दुःख पावे ॥
पुज्जल संग निवारत तिणदिन, अजरामर होय जावे
॥ सं० ॥ १२ ॥ पुज्जल राग करी चेतनकुं, होत क
र्मको बंध ॥ पुज्जल राग विसारत मनथी, नीरागी
निर्बंध ॥ सं० ॥ १३ ॥ तन मन काय जोग पुज्जल
थी, निपजावे नितमेव ॥ पुज्जलसंग विना अयोगी,
थाय लही निजजेव ॥ सं० ॥ १४ ॥ पुज्जल पिंम

थकी निपजावे, जला जयंकर रूप ॥ पुजलका परि
हार कियाथी, होवे आप अरूप ॥ सं० ॥ १५ ॥
पुजल रागी थइ धरत निज, देहगेहथी नेह ॥ पुजल
राग जाव तज दिलथी, छिनमें होत विदेह ॥ सं० ॥
॥ १६ ॥ पुजल पिंम लोलुपी चेतन, जगमें रांक क
हावे ॥ पुजल नेह निवार पलकमें, जगपति बिरुद
धरावे ॥ सं० ॥ १७ ॥ पुजलमोह प्रसंगें चेतन, चा
रुगतिमें जटके ॥ पुजलनेह तजी शिव जातां, सम
यमात्र नहिं अटके ॥ सं० ॥ १८ ॥ पुजलरस रागी
जग जटकत, काल अनंत गमायो ॥ काची दोय घ
डीमें निज गुण, राग तजी प्रगटायो ॥ सं० ॥ १९ ॥
पुजल रागें वार अनंती, तात मात सुत थइया ॥
किसका बेटा किसका बाबा, जेद साच जब लही
या ॥ सं० ॥ २० ॥ पुजलसंग नाटक बहु नटवत,
करतां पार न पायो ॥ जवस्थिति परिपक्क थइ तब,
सहेजें मारग आयो ॥ सं० ॥ २१ ॥ पुजलरागें दे
हादिक निज, मान मिथ्याती सोय ॥ देहगेहनो नेह
तजीने, सम्यक्दृष्टी होय ॥ सं० ॥ २२ ॥ काल अ
नंत निगोद धाममें, पुजल रागें रहियो ॥ दुःख अनं
त नरकादिकथी तुं, अधिक बहुविध सहियो ॥ सं०

॥ २३ ॥ पाय अकाम निर्ज्जराको बल, किंचित उं
चो आयो ॥ बादरमां पुज्जलरस वशथी, काल असंख
गमायो ॥ सं० ॥ २४ ॥ लही क्षयोपशम मतिज्ञान
को, पंचेंद्रिय जब लाधी ॥ विषयासक्त राग पुज्जलथी,
धार नरक गति साधी ॥ सं० ॥ २५ ॥ ताडन मारन
छेदन नेदन, वेदन बहुविध पाई ॥ क्षेत्रवेदना आदि
दईने, वेद नेद दरसाई ॥ सं० ॥ २६ ॥ पुज्जलरागें
नरकवेदना, वार अनंती वेदी ॥ पुण्यसंयोगें नरनव
लाधो, अशुन्न युगलगति नेदी ॥ सं०॥ २७ ॥ अति
डुर्लन्न देवनकुं नरन्नव, श्रीजिनदेव वखाणे ॥ श्रवण
सुणी ते वचन सुधारस, त्रास केम नवि आणे ॥
॥ सं० ॥ २८ ॥ विषयासक्त राग पुज्जलको, धरि नर
जन्म गमावे ॥ काग उडावणकाज विप्र जिम, मार
मणि पछतावे ॥ सं० ॥ २९ ॥ दश दृष्टांतें दोहिलो
नरन्नव, जिनवर आगम नाख्यो ॥ पण तिणकुं किम
खबर पडे जिण, कनक बीज रस चाख्यो ॥ सं० ॥
॥ ३० ॥ हारत वृथा अनोपम नरन्नव, खेल विष
य रस जूआ ॥ पीछें पछतावत मनमांहि, जिम सिं
मलका सूआ ॥ सं० ॥ ३१ ॥ कोइक नर इम वच
न सुणीने, धर्मथकी चित्त लावे ॥ पण जे पुज्जल आ

नंदी तस, स्वर्ग तणां सुख जावे ॥ सं० ॥ ३२ ॥ संजम केरां फल शिव संपत, अल्पमति नवि जाणे ॥ बिन जाणे नियाणां करीने, गज तज रासन्न आ णे ॥ सं० ॥ ३३ ॥ पौद्गलिक सुख रस रसिया नर, देवनिधि सुख देखे ॥ पुण्यहीन थयां दुर्गति पामे, ते लेखां नवि लेखे ॥ सं० ॥ ३४ ॥ देवतणां सुख वार अनंती, जीव जगतमें पाया ॥ निजसुख विण पु द्गल सुखसेंती, मन संतोष न आया ॥ सं०॥३५॥ पुद्गलीक सुख सेवत अहनिश, मन इंद्रि- अंधावे ॥ जिमघृत मधु आहूति देतां, अग्नि शांत नवि था वे ॥ सं० ॥ ३६ ॥ जिम जिम अधिक विषयसुख सेवे, तिम तिम तृष्णा दीपे ॥ जिम अपेय जल पा न कीयाथी, तृषा कहो किम छीपे ॥ सं० ॥ ३७ ॥ पुद्गलीक सुखना आस्वादी, एह मरम नवि जाणे ॥ जिम जात्यंध पुरुष दिनकरनुं, तेज नवि पहिचा णे ॥ सं० ॥ ३८ ॥ इंद्रिय जनित विषयरस सेवत, वर्त्तमान सुख गाणे ॥ पण किंपाक तणां फलनी प रे, नवि विपाक तस जाणे ॥ सं० ॥ ३९ ॥ फल किंपाकथकी एकज नव, प्राण हरण दुःख पावे ॥ इंद्रिय जनित विषयरस तेतो, चिहुंगतिमें नरमावे ॥

॥ सं० ॥ ४० ॥ एह्वुं जाणि विषयसुखसेंती, विमु खरूप नित रहीयें, त्रिकरणयोगें शुद्ध नावधर, नेद यथारथ लहीयें ॥ सं० ॥ ४१ ॥ पुण्य पाप दोय स म करी जाणो, नेद म आँणो कोउ ॥ जिम बेडी कंच न लोढानी, बंधनरूपी दोउ ॥ सं० ॥ ४२ ॥ नल ब ल जल जिम देखो संतो, उंचा चढत आकाश ॥ पाछा ढले नूमी पडे तिम, जाणो पुण्य प्रकाश ॥ ॥ सं० ॥ ४३ ॥ जिम साणसी लोहनीरें, क्षण पाणी क्षण आग ॥ पाप पुण्यनो इणिविध निश्चें, फल जाणो महानाग ॥ सं० ॥ ४४ ॥ कंप रोगमें वर्त्तमान डुःख, अकरमांहि आगांमी ॥ इणविध दोउ डुःखना कारण, नांखे अंतरजामी ॥ सं० ॥ ४५ ॥ कोउ कूपमें पडि मुवे जिम, कोउ गिरि ऊंपा खाय ॥ मरण बे सरिखा जाणियें पण, नेद दोउ कहेवाय ॥ सं० ॥ ४६ ॥ पुण्य पाप पुजलदशा इम, जे जाणे सम तुल ॥ शुनकिरिया फल नविचाहे ए, जाण अ ध्यातममूल ॥ सं० ॥ ४७ ॥ शुनकिरिया आचरण आचरे, धरे न ममता नाव ॥ नूतन बंध होय नही इणविध, प्रथम अरि शिर घाव ॥ सं० ॥ ४८ ॥ वार अनंत चूकीया चेतन, इण अवसर मत चूक ॥ मार

नीशाना मोहरायकी, गातीमें मत रुक ॥ सं० ॥ ४ए ॥ नदी गोल पाषाण न्याय करी, दुर्लन अवसर पायो ॥ चिंतामणि तज काच सैकल सम, पुजलथी लोनायो ॥ सं० ॥ ५० ॥ परवसता दुःख पावत, चेतन पुजलथी लोनाय ॥ ज्रम आरोपित बंध विचारत, मरकट मूठी न्याय ॥ सं० ॥ ५१ ॥ पुजल राग नावथी चेतन, थिर सरूप नवि होत ॥ चिहुं गतिमां नटकत निशदिन इम, जिम नमरिबिच पोत ॥ सं० ॥ ५२ ॥ जडलक्षण परगट जे पुजल, तास मर्म नवि जाणे ॥ मदिरापान गक्यो जिम मद्यप, स्वपर नवि पीगणे ॥ सं० ॥ ५३ ॥ जीव अरूपी रूप धरत ते, परपरणित परसंग ॥ वज्ररत्नमां फंक योग जिम, दर्शित नानारंग ॥ सं० ॥ ५४ ॥ निजगुण त्याग राग परथी थिर, गहत अशुनदल थोक ॥ शुद्धरुधिर तज गंधा लोही, पान करत जिम जोक ॥ सं० ॥ ५५ ॥ जड पुजल चेतनकुं जगमें, नाना नाच नचावे ॥ गली खात वाघकुं यारो, ए अचरिज मन आवे ॥ सं० ॥ ५६ ॥ ज्ञान अनंत जीवनो निजगुण, ते पुजल आवरियो ॥ जे अनंत शक्तिनो नायक, ते इण कायर करियो ॥ सं० ॥ ५७ ॥ चेतनकुं पुजल ये नि

शदिन, नानाविध डुःख पाले ॥ पण पिंजरगत ना
हरनी परें, जोर कछू नवि चाले ॥ सं० ॥ ५७ ॥ इ
तने परनी जो चेतनकुं, पुजल संग सोहावे ॥ रोगी
नरजिम कुपथ्य करीने, मनमां हर्षीत थावे ॥ सं०
॥ ५ए ॥ जात्यपात्य कुल न्यात न जाकुं, नाम गाम
नवि कोई ॥ पुजलसंगत नाम धरावत, निजगुण स
घलो खोई ॥ सं० ॥ ६० ॥ पुजलके वस हालत चा
लत, पुजलके वस बोले ॥ कहुंक वेगा टकटक जूए,
कहुंक नयण न खोले ॥ सं० ॥ ६१ ॥ मनगमता
कहुं नोग नोगवे, सुख सज्यामें सोवे ॥ कहुंक नूख्या
तरस्या बाहर, पड्या गलीमें रोवे ॥ सं० ॥ ६२ ॥
पुजलवश एकेंड्रिक बहु, पंचेंडीपण पावे ॥ लेश्यावंत
जीव ऐ जगमें, पुजल संघ कहावे ॥ सं० ॥ ६३ ॥
चउदे गुणथानक मारगणा, पुजलसंगें जाणो ॥ पुज
ल नाव विना चेतनमें, नेद नाव नवि आणो ॥ सं०
॥ ६४ ॥ पाणीमांहे गले जे वस्तु, जले अगनि सं
योग ॥ पुजलपिंम जाण ते चेतन, त्याग हरख अरु
सोग ॥ सं० ॥ ६५ ॥ गया आकृति तेज द्युति
सहु, पुजलकी परजाय ॥ सडन पडन विध्वंस ध
र्मी ए, पुजलको कहेवाय ॥ सं० ॥ ६६ ॥ मल्या पिंम

जेहने बंधे बे, कालें विखरी जाय ॥ चरम नयण करी देखीयें ते, सहु पुजल कहेवाय ॥ सं० ॥ ६७ ॥ चौदेराज लोक घृतघटजिम, पुजलद्रव्यें नरिया ॥ खंध देश परदेश नेद तस, परमाणुजिन करिया ॥ सं० ॥ ६८ ॥ नित्य अनित्यादिक जे अंतर, पक्ष समान विशेष ॥ स्याद्वाद समजणनी शैली, जिनवाणीमें देख ॥ सं० ॥ ६ए ॥ पूरण गलन धर्मथी पुजल, नाम जिणंद वखाणे ॥ केवलविण परजाय अनंती, चार ज्ञान नवि जाणे ॥ सं० ॥ ७० ॥ शुनथी अशुन अशुनथी जे शुन, मूल स्वनावें थाय ॥ धर्मपालटण पुजलनो इम, सतगुरु दीयो बताय ॥ सं० ॥ ॥ ७१ ॥ अष्टवर्गणा पुजलकेरी, पामी तास संयोग ॥ नयो जीवकुं एम अनादी, बंधणरूपी रोग ॥ सं० ॥ ॥७२॥ गहत वरगणा शुनपुजलकी, शुनपरिणामें जीव ॥ अशुन अशुन परिणाम योगथी, जाणो एम सदीव ॥ सं० ॥ ७३ ॥ शुनसंयोगे पुण्य संचवे, अशुन योगथी पाप ॥ लहत विशुद्धनाव जब चेतन, समजे आपा आप ॥ सं० ॥ ७४ ॥ तीन नुवनमें देखीये सहु, पुजलका विवहार ॥ पुजलविण कोउ सिद्धरूपमें, दरसत नहि विकार ॥ सं० ॥ ७५ ॥ पुज

लहुंके महेल मालीये, पुग्गलहुंकी सहेज ॥ पुग्गलपिं
मनारको तेथी, सुख विलसत धरि हेज ॥ सं० ॥
॥ ७६ ॥ पुग्गलपिंम धारके चेतन, नूपति नाम धरा
वे ॥ पुग्गलबलथी पुग्गल उपर, अहनिश हुकुम चला
वे ॥ सं० ॥ ७७ ॥ पुग्गलहुंके वस्त्र आनूषण, तेथी
नूषित काया ॥ पुग्गलहुंका चमर छत्र सिंहासन अ
जब बनाया ॥ सं० ॥ ७८ ॥ पुग्गलहुंका किला कोट
अरु, पुग्गलहुंकी खाई ॥ पुग्गकाहुंथी दारुगोला, रच
पच तोप बणाइ ॥ सं० ॥ ७९ ॥ परपुग्गल रागी थइ
चेतन, करत महासंग्राम ॥ छल बल कल करी एम
चिंतवे, राखुं अपणुं नाम ॥ सं० ॥ ८० ॥ ऋद्धिसि
द्धिबंके गढ तोडी, जोडी अगम अपार ॥ पण ते पु
ग्गलद्रव्य स्वजावें, विणसत लगे न वार ॥ सं० ॥
॥८१॥ पुग्गलके संयोग वियोगे, हरख शोक चित्तधारे॥
अथिरवस्तु थिरहोइ कहोकिम, इणिविध नहीय वि
चारे ॥ सं० ॥ ८२ ॥ जा तनको मन गर्व धरतहै,
छिनछिन रूपनिहार ॥ तेतो पुग्गलपिंमपलकमें, जल
बल होवे छार ॥ सं० ॥ ८३ ॥ इणविध ज्ञान हीये
में धारी, गर्व न कीजें मित्त ॥ अथिरस्वजाव जाण पु
ग्गलको, तजो अनादी रीत ॥ सं० ॥ ८४ ॥ परमात

मथी नेह निरंतर, लावो त्रिकरण शुद्ध ॥ पावो गुरु गम ज्ञान सुधारस, पूरवपर अविरुद्ध ॥ सं० ॥ ॥ ७५ ॥ ज्ञानज्ञान पूरण घट अंतर, थयो जिहां प रगास ॥ मोह निसाचर तास तेज लख, नाग थई उदास ॥ सं० ॥ ७६ ॥ भेदज्ञान अंतर दृगधारी, प रिहर पुग्गलजाल ॥ खीरनीरकी भिन्नता जिम, छिनमें करत मराल ॥ सं० ॥ ७७ ॥ एहवा भेद लखी पुग्ग लका, मन संतोष धरीजें ॥ हाण लाभ सुख दुःख अवसरमें, हर्ष शोक नवि कीजें ॥ सं० ॥ ७८ ॥ जो ऊपजे सो तुं नहि अरु, विणसे सोतुं नाहि ॥ तुंतो अचल अकल अविनाशि, समज देख दिलमांहि ॥ सं० ॥ ७९ ॥ तन मन वचन पणे जे पुग्गल, वार अनंती धाखा ॥ वम्या आहार अज्ञान गहलथी, फिर फिर लागत प्यारा ॥ सं० ॥ ८० ॥ धन्यधन्य ज गमें ते प्राणी, जे नित रहत उदास ॥ शुद्ध विवेक ही येमें धारी, करे न परकी आश ॥ सं० ॥ ८१ ॥ धन्य धन्य जगमां ते प्राणी, जे घट समता आणे ॥ वादवि वाद हीये नविधारे, परमारथ पंथ जाणे ॥ सं० ॥ ॥ ८२ ॥ धन्यधन्य जगमां ते प्राणी, जे गुरु वचन विचारे ॥ अष्टदयाना मर्म लहीने, आतमकाज सुधा

रे ॥ सं०॥ ९३ ॥ धन्यधन्य जगमां ते प्राणी, जेह प्र तिज्ञा धारे ॥ प्राण जाय पण धर्म न मूके, शुद्ध वच न अनुसारे ॥ सं० ॥ ९४ ॥ इम विवेक हिरिदेमें धा री, स्वपर भाव विचारो ॥ काया जीव ज्ञानदृग देख त, अहि कंचुकी जिम न्यारो ॥ सं० ॥ ९५ ॥ गर्भादि क दुःख वार अनंती, पुद्गलसंगें पायो ॥ पुद्गलसंग निवार पलकमें, अजरामर कहवायो ॥ सं० ॥ ९६ ॥ राग भाव धारत पुद्गलथी, जे अविवेकी जीव ॥ पाय विवेक राग तज चेतन, बंधण विगत सदीव ॥ सं० ॥ ९७ ॥ कर्मबंधनो हेतु जीवकुं, राग द्वेष जिन भाखे ॥ तजी राग अरु रोष हियेथी, अनुभ वरस कोउ चाखे ॥ सं० ॥ ९८ ॥ पुद्गल संग विना चेतनमें, कर्म कलंक न कोय ॥ जिम वायु संयोगवि ना जल, मांही तरंग न होय ॥ सं० ॥ ९९ ॥ जी व अजीव तत्त्व त्रिभुवनमें, युगल जिनेश्वर भाखे ॥ अपर तत्त्व जे सप्त रहे ते, संयोगिक जिन दाखे ॥ ॥ सं० ॥ १०० ॥ गुण पर्याय द्रव्य दोऊके, जुए जु ए दरसाये ॥ ए समजण जिणके हिय ऊतरी, तेतो नि जघर आये ॥ सं० ॥ १०१ ॥ भेद पंचशत अधिक तिरेशठ, जीव तणा जे कहीयें ॥ ते पुद्गल संयोग थ

की सद्दु, व्यवहारें सरदहीये ॥ सं० ॥ १०२ ॥ निह्चें नय चिड्रूप द्रव्यमें, नेदनाव नहि कोय ॥ बंध अबंधकता नय परखथी, इण विध जाणो दोय ॥ सं० ॥ १०३ ॥ नेद पंचशत त्रीश अधिक रूपी पुजलके जाणो ॥ त्रीश अरूपी द्रव्य तणे जिन आगमथी मन आणो ॥ सं० ॥ १०४ ॥ पुजलनेद नाव इम जाणी, परपख राग निवारो ॥ शुद्ध रमणता रूप बोध अंतगेत सदा विचारो ॥ सं० ॥ १०५ ॥ रूप रूप रूपांतर जाणी, आणी अतुल विवेक ॥ तद गत लेश लीनता धारे, सो ज्ञाता अतिरेक ॥ सं० ॥ १०६ ॥ धार लीनता लवलव लाई, चपलनाव विसराई ॥ आवागमन नही जिण थानक, रहियें तिहां समाई ॥ सं० ॥ १०७ ॥ बाल ख्याल रचियो ए अनुपम, अल्पमति अनुसार ॥ बाल जीवकुं अति उपगारी, चिदानंद सुखकार ॥ सं० ॥ १०८ ॥ इति पुजलगीता संपूर्णा ॥ श्रीरस्तु शुनं नवतु ॥